Chap-7

सप्तम अध्याय : लखपतिसिंह की काव्य कला

सप्तम अध्याय

लखपतिसिंह की काव्यकला

कवि अपने मन में जिस वस्तु, भाव, क्रिया आदि का अनुभव करता है वह अपने मूल रूप में सूक्ष्म, तरल और निराकार आनन्दानुभूति मात्र होती है। वह उसको रेखा, रंग, शब्द, स्वर आदि की सहायता से रूपायित करने का प्रयत्न करता है। प्रसिद्ध कलाविवेचक और दार्शनिक बेनेदेतो क्रोचे के मत से यह रूप रचना ही कला है।[१] काव्य के इसी विशिष्ट एवं " प्रत्यक्षीकरण पक्ष " की चर्चा करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि " कविता वस्तुओं और व्यापारों का बिम्ब-ग्रहण कराने का प्रयत्न करती है - - - "[२] साहित्यिक रचना के इस रूपगत अथवा बिम्बात्मक पक्ष को आलोचकों ने कलापक्ष की संज्ञा दी है।[३] कलापक्ष के विविध उपकरण चित्रात्मकता, अप्रस्तुत विधान तथा अलंकार-प्रयोग, भाषा, छंद इत्यादि रचना के भावपक्ष को आकार प्रदान करते हैं। इसलिये काव्यकला के अध्ययन के अंतर्गत इन विविध उपकरणों का अध्ययन किया जाता है।

(अ) चित्रात्मकता :

कवि अपनी निराकार रसानुभूति को साकार रूप देने के

---

१ " एस्थेटिक्स ", ले० बेनेदेतो क्रोचे, अनुवादक: डगलास इन्सली, द्वितीय आवृत्ति, पृ० २५, मैकमिलन एण्ड कम्पनी प्रकाशन।

२ " चिन्तामणि," पहला भाग निबंध - " साधारणीकरण और व्यक्ति वैचित्र्यवाद", पृ० २२८, ले० रामचन्द्र शुक्ल, इंडियन प्रेस, प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग, १९५८।

३ " साहित्यालोचन ", ले० डॉ० श्यामसुन्दरदास, १४ वाँ संस्करण, पृ० ६८।

लिये एक ओर आलंबन और आश्रय की मूर्त्त चेष्टाओं का अंकन करता है तथा दूसरी ओर उनकी वर्ण, द्युति, गति आदि से मंडित रूप-छटा का वर्णन करता है । महाराव लखपतिसिंह के साहित्य की प्रवृत्तियों में शृंगार मुख्य है । उन्होंने शृंगार की रसानुभूति के मधुर-मनोहर चित्र अंकित किये हैं । नायिका की विभिन्न शृंगार-चेष्टाओं का यह चित्र द्रष्टव्य है :

" मौंहनि मरौर चित चोर ठौर और लग्यौ
दरसाउ दौर करै कोऊ कौर आंन की ।
षीजैं रीझैं भीजैं लीजैं दीजैं धीजैं औ अधीजैं
नैंननि मैं हिलनि मिलनि सरसांन की ।
जोबन कौ जोर सेमन बैठति कठोर ह्वैं कैं
लालन की ओर रुष राषैं अलसांन की ।
प्यारे के तौ अंग छानि परी है बिकांनही की
प्यारी कै तौ अंग बांनि परी दूतरांन की ।। "
(" रस तरंग ", छं० सं० ३७८)

प्रस्तुत उदाहरण में कवि ने नायिका की विमुग्धकारी चेष्टाओं का वर्णन किया है । भौंहें मरोड़ना, खीझना, रीझना, प्रेमरस में भींगना, नैनों ही नैनों में हिलना-मिलना इत्यादि चेष्टाओं द्वारा नायिका के मन में छिपे भावों का सुंदर चित्र अंकित किया गया है । एक अन्य छंद में कवि ने सुनहले चंपक वर्ण के गोरे अंगों एवं वस्त्रों की द्युति की पार्श्वभूमि में कंचुकी के बन्द कसती " हरैं हरैं " चलती और नूपुर बजाती नायिका की चंचल आंगिक चेष्टाओं का सुंदर चित्र प्रस्तुत किया है :

" पांनिप सरोवर मैं मुष राजैं पंकज सौं दार्यौं
बिया मुतिया सी छबि है दसन की ।

ग्रीवा भुज उरज अनूप रूप बिधि कीन्हे
कैसी चतुराई कहूं " कंचुआ " कसन की ।
अंग की गुराई नैंकु पाई है कनक चंपै
भलक बढावैं दुति दूनी यैं बसन की ।
हरैं हरैं चलति हरति मन हरि जू कौ
हरष बढावै धुनि बाजति रसन की । "
("रस तरंग ", छं० सं० ३५३)

इस छंद में नायिका की सर्वांगसुन्दरता के वर्णन के साथ साथ उसकी आंगिक क्रियाओं द्वारा सुकुमारता और चंचलता की जो व्यंजना हुई है वह सहृदय को कवि द्वारा अनुभूत शृंगाररस तक पहुँचाने में सक्षम है ।

नायिका प्रिय के आगमन का समाचार पाते ही हड़बड़ी में अपने को सजाने का प्रयत्न करती है । वह प्रेम-विह्वल हो गई है । हर्ष और राग के अतिरेक के परिणामस्वरूप अधीरतावश वह आभूषणों के उचित स्थान को भूलकर उन्हें कहीं-के-कहीं रख देती है । नायिका की इस मनःस्थिति का मूर्त रूप निम्नलिखित छन्द में द्रष्टव्य है :

" सीस फूल कांन ही में पहर्‌यौ उतायल सौं
कांन कौ तरयौंना लै कैं सीस पैं धरति है ।
कंठ कंठी लै कैं बांधी गजरा की ठौर हाथ
गजरा उतारि नारि कंठ पैं भरति है ।
हीये के तौ मोती हार कटि सौं लपेटि ल्ये
कटि किंकिनी कौ हार हीये पैं करति है ।

आवन सुन्यौ है मनभावन कौ आरी अैसें
बावरी सी भई घर आँगन फिरति है ।। "

("रसतरंग ", छं० सं० ३५१)

यहाँ एक बात उल्लेखनीय है, वह यह कि काव्यशास्त्र विषयक ग्रन्थ में शास्त्रानुरोध से कवि ने जो परंपरागत विषय-निरूपण किया है, उसमें उनकी निजी अनुभूति को अपेक्षाकृत कम स्थान है, परंतु इससे कवि के अभिव्यक्ति - कौशल का सुन्दर परिचय मिलता है ।

महाराव लखपतिसिंह शृंगार रस के अनुभावविधान को बड़े कौशल से प्रस्तुत करते हैं । उनके अनुभाव-चित्र आलंबन की हृदयस्थ अनुभूति का सुंदर साकार रूप उपस्थित करते हैं । ऐसा ही एक चटकीला चित्र इस प्रकार है । सुंदर नायिका को अपने रूप का गर्व है । अपनी रुचि के अनुसार वह स्वयं को सजाती है ; केश सँवारती है, टीका लगाती है, नैनों में काजल लगाती, वस्त्र-परिधान करती और सदर्प अपने सौन्दर्य को दर्पन में देखती है । परंतु कवि ऐसे सुंदर रूप का वर्णन मात्र करना नहीं चाहते । वे आगे बढ़ कर कहते हैं, यह गर्वीली नायिका बड़ी चतुराई से नायक पर अपने रूप का प्रभाव जमाना चाहती है । इसके लिए वह काजल लगे नैनों से नायक को देखती और छटापूर्वक चलते हुए अपने बिछिया के घुंघरू बजाती है । कवि ने नायिका के हृदयस्थ " मद " को इस प्रकार साकार किया है —

" दर्पन देषति आपने हाथ तैं पारति पाटीं यैं टीकी बनावै ।
काजर दै चतुराई कियैं अति नैंननि नायक चित्त चुरावै ।
ओढति चूंनरिया चटकीली छबीली यैं कंचुक चोआ लगावै ।
चाल चलैं भ्रितकारी की कामिनि औ बिछिया घुघरू कौं बजावै ।।"

(" रसतरंग ", छं० सं० ३६६)

महाराव लखपतिसिंह ने शृंगार रस के अंतर्गत संयोग के अतिरिक्त वियोग पक्ष का भी वर्णन किया है । संयोग शृंगार की भाँति वियोग-शृंगार के अनुभाव-विधान के चित्र भी उन्होंने उतनी ही सफलता से अंकित किये हैं । उदाहरणार्थ यह छंद प्रस्तुत किया जाता है :

" रूप रंग आंन षांन पांन की न सुधि या कैं
 गांन पैं न देति कांन बिरह बरति है ।
सरद जुन्हाई है पैं आगि सी लगाई तन
 फूलमाल ब्याल जांनि हीये नांधिरति है ।
कौंहनी टिकाय धर द्वै कपोल राषे कर
 द्रिगनि तैं आंसु धारैं कुच पैं भरति है ।
सांवरे के मिलिवे कौं मन मैं मनोरथ कै
 संभु कौं सहस घट नागरि करति है ।। "

("रसतरंग", छं० सं० १२७)

प्रस्तुत छंद में विरह-वर्णन मैं परंपरागतता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है परंतु " कौंहनी टिक्या धर द्वै कपोल राषे कर " मैं जो अनुभाव-चित्र अंकित हुआ है वह लखपति की काव्य-कला की ओर पाठक का ध्यान खींचता है । एक अन्य उदाहरण भी द्रष्टव्य है :

" आई है संकेत ठांन उहां लषे नहीं कान्ह
 उडी सबैं सांन औ उठांन सांस की सही ।
आंसू षेद लोइन ललाई यैं लषाई या कैं
 लाज सौं लपेटी कांमदेव देह कौं दही ।

ऐक हाथ डार पैं कपोल कौं अधार दूजौ
चित्रित सी ह्वै रही बिचार पूर मैं बही ।
आधी आधी आंषनि सौं आधी आधी बातैं होत
आधी बीरी चाबी और आधी मुष मैं रही ।। "
("रसतरंग ", छं० सं० १६२)

प्रस्तुत उदाहरण में कवि ने मध्या विप्रलब्धा नायिका की मनोदशा का बडा सजीव चित्र खींचा है । नायिका संकेतस्थल पर आती है । नायक को वहाँ न देखकर वह सखेद हो जाती है । उसकी आँखों में आँसू उभर आते हैं, आँखों में ललाई दिखाई पड़ती है, कामावेग से उसकी देह जलने लगती है । यहाँ तक तो कवि ने नायिका की दुःखी मनःस्थिति का सामान्य चित्र दे दिया है, परंतु अंतिम चार पंक्तियों में उसमें अत्यन्त सजीवता भर दी है, जिसके कारण सम्पूर्ण चित्रण अत्यंत प्रभावशाली हो गया है ।

रीतिकाल के प्रसिद्ध आचार्य कवि देव ने वियोगिनी नायिका का ऐसा ही चित्र प्रस्तुत किया है [५]:

" प्यारी संकेत सिधारी सखी संग स्याम के काम संदेसनि के सुख ।
सूनी इतै रंग-भौन चितै चित मौन रही चकि चौंकि चहूं रुख ।
एक ही बार रही जकि ज्यौंकि त्यौं मोहनि तानिकै मानि
महादुख ।
देव कछु रद बीरी दबी री सु हाथ की हाथ रही मुख की मुख ।।"

डॉ० नगेन्द्र ने देव के इस छंद की आलोचना करते हुए लिखा है : " चित्र

०००००००

५ " देव और उनकी कविता ", पृ० १८३

में सजीवता आती है अन्तिम रेखा से ही — जिसको स्पष्टत: कवि ने गहरा कर दिया है — " देव कछू रद बीरी दबी री सु हाथ की हाथ रही मुख की मुख । " [६] पूर्वोक्त छंद में महाराव लखपति द्वारा खींचा गया चित्र देव के प्रस्तुत चित्र से तुल्य है –

" आधी आधी आंषनि सौं आधी आधी बातैं होत
आधी बीरी चाबी और आधी मुष मैं रही । "

अत: यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि देव की तरह लखपतिसिंह भी चित्रण के इस रहस्य से परिचित थे ।

पूर्वनिर्दिष्ट विवेचन से प्रकट है कि महाराव लखपतिसिंह की काव्य-रचना में शृंगाररस की अनुभूति को साकार करनेवाले इन चित्रों का महत्त्वपूर्ण स्थान है । ये इस बात के प्रमाण हैं कि वे अनुभाव-विधान द्वारा सूक्ष्म, तरल और निराकार रसानुभूति को मूर्त रूप देने की क्षमता रखते हैं । इस तथ्य के अन्य उदाहरण भी दृष्टिगत किये जा सकते हैं जो उनके अन्य ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं ।

आलंबन की चेष्टाओं एवं अनुभूतियों के अनेक रेखाओं से युक्त चित्रों को हम दृष्टिगत कर चुके हैं । अब जो उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं उनमें एकाध अनुभाव के द्वारा ही कवि ने विशिष्ट भाव को रेखांकित कर दिया है । नायिका आभूषणों से सुसज्जित हो कर नायक को आकृष्ट करती है । वह मुड़ मुड़ कर मुस्काती है । उसकी ऐसी रसोद्दीपक क्रिया अत्यन्त लुभावनी है :

" भूषन भाइ बनाइ के कछुक मुर मुसिकाइ ।
बार हि बार मनोज कौं बेलवत्व अति धाइ ।। "

("सुरतरंगिनी " छं० सं० ५७०)

००००००००
६ वही ('देव और उनकी कविता') पृ० १८३

कवि ने यहाँ छोटी-सी अनुभाव-रेखा का कलात्मक प्रयोग किया है। सुन्दर, सजी-धजी नायिका का मुड़ मुड़ कर मुस्काना अपने आप में ही संयोग शृंगार की एक अत्यंत भावोद्दीपक क्रिया है। कवि ने बड़ी कुशलता से अत्यंत संक्षेप में ही आश्रय की सौन्दर्य-लालसा को व्यंजित कर दिया है। एक अन्य उदाहरण में कवि ने ऐसा सुंदर अनुभावांकन किया है। नायक परदेशगमन के लिये उद्धत है, यह सुनते ही नायिका " नींची ग्रीव ढारी छिति छोलति है नष सों। " लखपतिसिंह के साहित्य में प्राप्त ऐसे अनेक उदाहरणों में कतिपय उदाहरण यहाँ उल्लेखनीय हैं :

१ " पीय बियोग तैं गद कै बद्यौ दुष की नांहिं सम्हारि।
बेठ रही सिर नाइ कैं घूसरि भरी सुनारि।। "
(" सुरतरंगिनी", छं० सं० ५७५)

२ " दीरघ सांस भरै दबि कैं द्रिग राषति है मग ही मैं अडोलैं।
सीरी परी है अधीरी भई अति पीरी परी दुति दोऊ कपोलैं।।"
("रसतरंग " छं० सं० १६९)

३ " पग चलत नांहि पुनि हाथ ठंठ सूझत आंषि सुकि गयौ कंठ।
तारू मिरि दंतनि बंधे तासु रुकि गई नास रुंधि गयौ स्वासु।।"

४ " हियरा धरकि आयौ आंचर ढरकि आयौ
घूंघट सरकि आयौ भरक मतवारी सी।। "
("रसतरंग ", छं० सं० २९)

५ " प्रीतम सुमिरत विरह तैं लटी देह निरधार "
(" [redacted] सुर तरंगिनी ", छं० सं० ६०२)

६ " तडि तरफत भरपत द्रगन अंचल दुति फहरात "

(" सुर तरंगिनी ", छं० सं० ७०४)

उक्त रेखांकित उदाहरणों को पूर्ववर्ती विवेचन से सम्बद्ध करके यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि अनुभावों को चित्रित करने की शक्ति लखपति में पर्याप्त मात्रा में है । वे आलम्बन एवं आश्रय की चेष्टाओं का यथार्थ, सुंदर और रसोद्दीपक चित्रांकन करने की कला में सिद्धहस्त हैं ।

अनुभावविधान के उपरान्त आलम्बनविधान को लेकर भी लखपति की काव्यकला के सुन्दर उदाहरण प्राप्त होते हैं । उन्होंने नायिका के सुन्दर-ललित अंगों एवं चमकीले-चटकीले वस्त्राभूषणों के रंग-बिरंगे, द्युतिमान् चित्र प्रस्तुत किये हैं । वर्ण एवं द्युति के सम्मिश्रण से युक्त ऐसे ये चित्र कवि की रूपासक्ति एवं व्यंजक-शक्ति के उल्लेखनीय उदाहरण हैं । नायिका की सुनहली देह पर रक्त और नील-वर्ण के वस्त्रों की शोभा द्रष्टव्य है :

" कुंदन रुचिर अनूप तन काम कला रस लीन ।
मत्त महारस वीर में राते वसन नवीन ।। "

" सोभे सोने तें सरस अंग अंग सोभा अंग ।
नीलनि चोलनि में लसे ज्यों तडि घन के संग ।। "
(" सुर तरंगिनी ", छं० सं० ५५३, ५७१)

प्रथम छंद में सुवर्ण के चमकीले पीले रंग के साथ " रक्त वर्ण का आयोजन कलात्मक है परंतु " कामकला रस " में लीन नायिका के साथ अनुराग के बदले वीरता की योजना कुछ खटकती है । परंतु द्वितीय छंद में कवि ने सुवर्ण और नीले रंगों का सरस मिश्रण किया है । सुवर्ण के साथ नीली श्यामलता की अनुपम छटा को स्पष्टतः उभारने के लिये बिजली और घन का उल्लेख कलात्मक बन पड़ा है । गौरांगी नायिका के अंगों पर लाल टीके की तथा अरुण वस्त्रों की शोभा का वर्णन

कवि करते हैं :

" अरुन बसन अंग में लसे सोहत गोरे गात ।
भाल लाल टीको लसे अरुन नैंन सरसात ।। "
("सुर तरंगिनी ", छं० सं० ६१९)

प्रेम का वर्ण लाल माना गया है । नायक के मन में रंग (प्रेम) उपजानेवाली नायिका के रागयुक्त अंगों एवं वस्त्रों का यह चित्र एक ही रंग में रँगा हुआ है :

" अरचे सिव को प्रीत कर अंबर राते अंग ।
कर त्रिसूल सारी सुभग राजित लाल सुरंग ।। "

" रतनारे द्दग कोप सों चंचल चपल अनूप ।
सुंदर गति यह सैंधवी प्रीतम मनहर रूप ।। "

" लोने अंग अंग पुर ढलैं चढि तरंग रन रंग ।
लोहू लाल गुलाल सों भर्यो वीर रस अंग ।। "
(" सुर तरंगिनी ", छं० सं० ५५१, ५५२, ५९०)

शृंगार के अनुकूल वर्ण-योजना करते करते कवि " लोहू", "गुलाल " से भरे " वीर रस " का भी उल्लेख कर देते हैं । यहाँ रसवैभिन्य के बदले एक समान वर्ण का उल्लेख ही कवि का अभीष्ट है ।

प्रिय के वियोग में दुःखी नायिका के मुरझे हुए अंगों के फीके-पीले रंग का यथायोग्य उल्लेख कवि की तद्विषयक कलात्मक सूझबूझ का परिचायक है :

(१) " सीरी परी है अधीरी भई अति पीरी परी दुति दोऊ कपोलैं ।"
(" रसतरंग ", छं० सं० १६९)

(२) " पीत बसन तन बन फिरै पिकधुनि सुनि मुरझात ।
मन मैं सुमिरै प्रीत मैं दुनो दुष सरसात ।। "
("सुर तरंगिनी ", छं० सं० ५८८)

उपर्युक्त उदाहरणों में फ़नीके अंगों और वस्त्रों के पीत वर्ण का कवि ने सहेतुक प्रयोग किया है ।

आलम्बन के रूप-चित्रण में कवि ने नायिका की देहद्युति का अनेक बार वर्णन किया है । यह वर्णन प्रकाश और रंगों के मिश्रण का अद्भुत चमत्कार लिये हुए है । कहीं आभूषणों की ज्योति, सुनहले केशों की द्युति, फरफराते आँचल की चमक, तो ह कहीं चंपक, नील, लाल, पीत आदि वर्णों की आभा की पार्श्वभूमि में नायिका की देहद्युति का कलात्मक वर्णन कवि ने किया है :

" भूषन मानिक की जहाँ प्रगटि अति लषि जोति ।
दीप लषि सकुचे हीयैं सनमुष दुति जब होति ।। "

" तरुनी बेस किसोर दुति चंपक हरत रसाल ।
केस बेस मष्तुल दुति हरे सुमृदुता बाल ।। "

" आनन ससि परकास दुति मुदित बगन की पांति ।
तडि तरफत झरपत दगन अंचल दुति फहरात ।। "

" नील कंज सी देह दुति, कटि पटि पीत लसंत ।
ऊजल ससि उजिआर कों ऊपरे ना सुहसंत ।। "

" चंपा संपा देहदुति पीय सो सरसे नेह ।
अधरनि लाली देषि कैं अंग अंग सरस बिदेह ।। "

इस प्रकार वर्ण और द्युति के वैविध्य एवं सम्मिश्रण द्वारा कवि ने सुन्दर कलात्मक आलम्बन विधान किया है ।

आलम्बन के रूप-चित्रण के लिये उन्हों ने संगीतात्मकता और गति का भी कहीं कहीं अच्छा प्रयोग किया है । किन्तु इस प्रकार के उदाहरणों की संख्या कम ही है । अतः इस प्रकार के आलम्बन-विधान को उनके काव्य की सर्वप्रधान विशेषता के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता । सुंदर नायिका की चंचल गति तथा उसके साथ उसके पैरों के घुंघरूओं के बजने की सस्वरता छंद अथवा पंक्ति विशेष में एक कलात्मक वातावरण का निर्माण करती है । तद्विषयक काव्य-पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :

१ " हरैं हरैं चलति हरति मन हरि जू कौ
हरष बढावै धुनि बाजति रसन की । "

२ " चाल चलैं न्रितकारी की कामिनि
औ बिछिया घुघरू कौं बजावैं ।। "

३ " भीतर तैं चलि बाहर जाति है बाहिर तैं फिरि भीतर आई ।
नुपुर घूघर औ बिछिया धुनि मानौं ये पातरि मैंन नचाई ।।"

इन काव्य-पंक्तियों में नायिका के आभूषणों के घुंघरूओं के बजने की ध्वनि पूरे छन्द में संगीतात्मक वातावरण को जन्म देती है । इसी प्रकार एक छोटी-सी पंक्ति में कवि ने सौन्दर्य की चंचल गति की सरस व्यंजना की है । नायिका ने नाक में नथनी पहनी है । नथनी का छोटा-सा मोती चंचल नायिका के अनुभावों की गति पर नाच रहा है । मोती के इस नृत्य का वर्णन कवि ने कलात्मकतापूर्वक किया है :

" सुक चंचा नासा सुभ दरसी कहि सुगंध कै गढ्ढ़ि कंदर सी ।
नाचत तह मुक्ता नृतकारीइ थिरकत थेइकार सुघधारी ।। "
(" लखपति भक्ति विलास ", छं० सं० २२७)

उपर्युक्त विवेचन का निष्कर्ष यह है कि महाराव लखपतिसिंह की काव्य-कला में काव्य के आलम्बन एवं आश्रय की सूक्ष्म, तरल और

निराकार अनुभूतियों को चित्रित करने की क्षमता है । इस प्रत्यक्षीकरण के कार्य के लिये वे रेखा, रंग आदि की सहायता लेते हैं । परिणामस्वरूप पाठक अमूर्त भावों के मूर्त रूप को ग्रहण कर सकते हैं । काव्य के इस " प्रत्यीक्षीकरण पक्ष " के लिये कवि ने चित्रात्मकता का सफल प्रयोग किया है ।

(आ) अप्रस्तुत-विधान :

काव्य के वर्ण्य अर्थात् प्रस्तुत को अधिकाधिक रमणीय, बोधगम्य और प्रभविष्णु बनाने के लिये अप्रस्तुतों का विधान किया जाता है । इसका प्रमुख आधार साम्य होने के कारण उपमा को सभी अर्थालंकारों का मूल माना गया है । [७] यह साम्य मुख्यतया तीन प्रकार का होता है, रूप-साम्य, धर्म-साम्य और प्रभाव-साम्य । इन साम्य-मूलक अप्रस्तुतों के अतिरिक्त साम्य पर आंशिक आधार रखनेवाले कुछ अप्रस्तुतों का भी विधान किया जाता है जिनमें प्रमुख हैं : उत्प्रेक्षा, उदाहरण और दृष्टांत । महाराव लखपतिसिंह के कृतित्व में साम्य-मूलक अप्रस्तुतों का ही प्राधान्य है । उन्होंने उपर्युक्त तीनों प्रकार के साम्य पर आधारित अप्रस्तुतों का विधान किया है जिनमें से सर्वप्रथम रूप-साम्य-मूलक अप्रस्तुत-विधान का विवेचन किया जा रहा है ।

(१) रूप-साम्य-मूलक अप्रस्तुत विधान :

नायक-नायिका के शारीरिक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के

---

७ द्रष्टव्य :

" उपमैका शैलूषी सम्प्राप्ता चित्रभूमिका भेदान् ।
रंजयति काव्यरंगे नृत्यन्ती तद्विदां चेतः ।। "

("चित्र मीमांसा ", निर्णय सागर, पृ० ५)

अर्थात् " उपमा ही वह नर्तकी है, जो नाना प्रकार की अलंकार भूमिका

——आगे चालू

लिये उनके सुडौल अंगोपांगों की मनमोहक आकृति, सुंदर देहवर्ण, उन पर सजे विविध आभूषणों की चमक-दमक आदि का रस के माध्यम से कलात्मक और कल्पनापूर्ण वर्णन किया जाता है । इस में वर्ण्य अर्थात् प्रस्तुत की आकृति, वर्णादि से साम्य रखनेवाले प्राकृतिक और मानव-निर्मित पदार्थों को अप्रस्तुत के रूप में लाया जाता है, और प्रायः परंपरा-प्रसिद्ध अप्रस्तुतों का आधिपत्य पाया जाता है । रीतिकाल के साधारण कवियों ने इन रूढ़िबद्ध अप्रस्तुतों का अन्धानुगमन किया है परंतु प्रतिभासम्पन्न कवियों ने उनमें भी रमणीयता का निर्माण करने का प्रयत्न किया है । [८] महाराव लखपतिसिंह ने भी विशेषतया नख-शिख-वर्णन के प्रसंग में ऐसे रूढ़िबद्ध अप्रस्तुतों को अपनाया है जिनमें सौन्दर्य-बोध की क्षमता का अभाव है । नायिका के अंगोपांगों से रूप साम्य रखनेवाले ऐसे रूढ़ अप्रस्तुतों का एक उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य है :

" कुच कलसनि करि कुंभ कहावै, सूंडि स्याम रोमालि सुहावै
करिहाँ केसरि लंक कहावै रसना सुर ता पर सुष पावै ।
सिषरी सानु नितंब सुढारे उरन रंभा तरन अनुसारे । "
(" लखपति भक्ति विलास ", छं० सं० २३७ एवं २४०)

oooooooo

पिछले पृष्ठ से -

में काव्य-मंच पर अवतीर्ण हो कर, काव्य-रसज्ञों को आह्लादित करती रहती है । "

- " कुवलयानन्द " की हिन्दी-भूमिका, पृ० ३७, भूमिका-लेखक : डॉ० भोलाशंकर व्यास, चौखम्बा विद्याभवन प्रकाशन, द्वितीय संस्करण ।

८ डॉ० नगेन्द्र ने लिखा है : " रीतिकाल में आकर उपमान प्रायः रूढ़ हो गये थे । संस्कृत में नायक-नायिका के प्रत्येक अंग के लिए, रूप के प्रत्येक अवयव के लिए उपमानों की एक परम्परा-सी निश्चित हो गई थी । रीतिकाल के साधारण कवि तो प्रायः उनका ही रूढ़िबद्ध प्रयोग करते रहे - - - - - । "

- " देव और उनकी कविता ", पृ० १९०।

इन पंक्तियों में कवि ने नायिका के अंगों - कुच, रोमावलि, कमर, नितम्ब आदि प्रस्तुत विषय से आकार-साम्य रखनेवाले अप्रस्तुतों, क्रमशः कलश, कुंभस्थल, सूंड़, केसरि, शिखर-सानु आदि का वर्णन किया है । परंतु ऐसे कथन से नायिका के उन अंगों के सौन्दर्य का बोध नहीं हो पाता । कारण यह है कि ये सभी रूढ़ उपमान नायिका के अंगों का आकार निर्दिष्ट करके समाप्त हो जाते हैं । परम्परागत उपमानों की सौन्दर्योत्तेजक शक्ति को स्वीकार करने पर भी आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ऐसे अप्रस्तुतों का विवेचन करते हुए लिखा है कि ये " आकार आदि ही निर्दिष्ट करते हैं, सौन्दर्य की अनुभूति अधिक करने में सहायक नहीं होते - जैसे जंघों की उपमा के लिये हाथी की सूंड़, नायिका की कटि की उपमा के लिये भिड़ या सिंहनी की कमर इत्यादि । " [९] उपर्युक्त उदाहरण में प्रयुक्त सभी उपमान सौन्दर्यानुभूति को जगा सकने में असमर्थ हैं ।

जैसा कि आरंभ में निर्दिष्ट किया जा चुका है कि रीतिकाल के शृंगारप्रेमी कवियों की तरह लखपतिसिंह ने भी रूढ़ नख-शिख-वर्णन-पद्धति का अनुगमन करने के कारण इन रूढ़िबद्ध अप्रस्तुतों को अपनाया है । सुप्रसिद्ध कवि देव भी इसके अपवाद नहीं थे । परम्परा के आग्रह के वशवर्ती हो कर वे भी नायिका की आँखों के वर्णन में प्रचलित अप्रस्तुतों की सूची सी दे देते हैं । [१०] अतः इस निष्कर्ष पर सहज ही पहुँचा जा सकता है कि लखपतिसिंह ने भी अपने समय के कवियों

oooooooo

९ " जायसी ग्रन्थावली ", भूमिका-पृष्ठ १०१, ले० रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी प्रकाशन, चतुर्थ संस्करण ।

१० द्रष्टव्य : " हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास ", षष्ठ भाग, पृ० २५४ ।

की भाँति परम्परागत अप्रस्तुतों को अपनाया है । परंतु उनके समग्र कृतित्व को देखने से यह पता चलता है कि परम्परा का ऐसा अनुसरण सर्वत्र नहीं पाया जाता । उनके द्वारा किये गये अप्रस्तुत-विधान में ऐसे उदाहरण कम नहीं हैं, जिन में परम्परागत अप्रस्तुतों का भी उन्हों ने रमणीय प्रयोग किया हो । यहाँ कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं :

" हुअ हरष हिमगिरि गेह अंतर रचे रंग सुरंग है ।
परदा पटंबर स्वछ सुंदर सौंन तारनि संग है ।
परियत्त पटंतरि लषति सुंदरि द्रिगनि चंचल देष्यिैं ।
जिम षीर समुदर जाल अंदर मच्छनि से चष लेष्यिैं ।। "
(" सदाशिव-ब्याह ", छं० ३१९)

शिव के साथ अपनी पुत्री पार्वती के विवाह का निश्चय हो जाने से हिमवान हर्षित हो जाते हैं । गृह को सजाया जाता है । स्वच्छ सुंदर वस्त्रों और सुप्रकाशित वातावरण के मध्य खड़ी सुन्दिरयों की आँखों के लिये कवि ने यहाँ " चख-मच्छ " के परम्परा-प्रसिद्ध उपमेय-उपमान का प्रयोग किया है । परंतु यहाँ परम्परागत रूढ़ कथन मात्र से आगे बढ़कर कवि ने अपनी प्रतिभा और कल्पना-शक्ति से उसमें चित्रोपम सौन्दर्य निर्मित किया है । एक ओर स्वच्छ सुंदर वस्त्रों और सुनहले प्रकाश से घिरी सुंदरियों की चंचल आंखों का उपमेय है तथा दूसरी ओर क्षीर समुद्र के फेनिल चमकीले जाल में चंचल मछलियों का सजीव, चित्रोपम कल्पना से युक्त उपमान ।

एक अन्य उदाहरण भी द्रष्टव्य है :

" बिब भ्रू पिय बसिकरन बिथारै
पदमपत्र ~~जस~~ अलि पंष पसारै ।। "
("लषपति भक्ति विलास ", छं० २२५)

इस उदाहरण में भी नायिका की भौंहों के लिये भ्रमर का परम्परा-प्रसिद्ध उपमान प्रयुक्त हुआ है । उपर्युक्त उदाहरण की भाँति यहाँ भी कवि ने परम्परा के साथ कल्पना का सुन्दर समन्वय किया है । परम्परानुसार भ्रू के लिये भ्रमर के अप्रस्तुत-विधान के साथ ही कवि ने नायिका के भाल-प्रदेश के लिये पद्मपत्र की सुन्दर कल्पना की है । प्रिय को वशीभूत कर सकने वाली भौंहों के अप्रस्तुत के रूप में पद्मपत्र पर पंखों को फैलाने वाले रसमग्न भ्रमर की कल्पना परम्परागत होते हुए भी सहज सुंदर बन पड़ी है ।

लखपतिसिंह ने निर्जीव प्रस्तुतों के लिये सजीव अप्रस्तुतों का भी प्रयोग किया है और ऐसा करके परम्परा को एक भिन्न दृष्टि से अपनाया है । यहाँ प्रस्तुत अर्थात् वर्ण्य परम्परागत है जब कि उसके लिये प्रयुक्त अप्रस्तुत नवीन है । नायिका के निर्जीव आभूषणों का वर्णन करते हुए वे उनके लिये सजीव अप्रस्तुतों की योजना करते हैं ; जैसे :

एक : " नाचत तह मुक्ता नृतकारी
थिरकत थेइकार मुषधारी ।। "
(" सदाशिव-ब्याह ", छं० सं० २२७)

दो : " कुसुम कलित कर किन्हीं कबरी,
जिमि स्याम सिला थित सबरी ।। "
(" लखपति भक्ति विलास ", छं० सं० २१७)

नायिका की नकबेसर के मोती और कुसुमों से सजी वेणी के प्रस्तुत रीतिकाल के नख-शिख-वर्णन में परम्परा-प्रसिद्ध हैं । परंतु लखपति ने

उन परंपरागत प्रस्तुतों के लिये नवीन अप्रस्तुतों की योजना की है । नायिका की नकबेसर के चंचल मोतियों के लिये गोलाकार स्थल पर द्रुतगति से नाचनेवाले नर्तक का अप्रस्तुत नवीन होने के साथ प्रस्तुत के मूर्तिकरण में सफल भी है । उसी प्रकार नायिका के काले बालों के जूड़े में सजी वेणी (कबरी) के लिये श्याम शिला पर बैठी प्राकृतिक निश्छल सौन्दर्यवाली किसी ग्रामीण युवती (शबरी) की कल्पना जितनी " कबरी " और " शबरी " की तुकबंदी से अनुप्रेरित मालूम पड़ती है उतनी ही सहज रमणीय भी है ।

आकार-साम्य के अतिरिक्त वर्ण-साम्यवाले अप्रस्तुतों के विधान में भी लखपतिसिंह ने परम्परागत अप्रस्तुतों का रमणीय प्रयोग किया है । गौरवर्ण की नायिका की देहद्युति के लिये बिजली का अप्रस्तुत परम्परागत है । घने काले बादल की पृष्ठभूमि में कौंधनेवाली बिजली के वर्णसंयोजन के अप्रस्तुत के द्वारा कवि ने नायक के अचानक आ जाने के समाचार सुनकर चमत्कृत हो जानेवाली नायिका की द्युतिमान्, भाव-चमत्कृत मुखश्री को सफलतापूर्वक मूर्त कर दिया है —

" चौंकि उठी ततकाल वे बाल,
ज्यौं बीजुरी कौंधत बादल मैं । "
(" रसतरंग ", छं० २५९)

ऐसा ही एक अन्य रमणीय उदाहरण द्रष्टव्य है :

" माननि चालैं गजगति मराल, लाली निचुरत पगरंग लाल ।
अंगुरी नष तारनि ओप अंग, छिमि छिमि बाजै बिछुवा सुरंग ।"
("सदाशिव ब्याह ", छं० सं० ५५)

सुकुमार नायिका के पैरों से चूनेवाली लाली का वर्णन रीतिकालीन

कवियों ने किया है । ११ यहाँ नायिका के पग की लाली के साथ अँगुलियों के नखों के प्रकाश का संयोजन किया गया है । बिछुओं के " छिम-छिम " स्वर के कारण अभिव्यक्ति में सस्वरता भी आ गई है । इस प्रकार यह पूरा वर्णन ऐन्द्रिय बन गया है । एक अन्य उदाहरण में चाँदनी रात के उज्ज्वल दृश्य को उपस्थित करने के लिये कवि ने धरती की रूपे के पत्र से और चाँदनी की पारद से तुलना की है :

" की धरनी सब रूपे के पत्र सी ता परि चंदन लेप लगायौ ।
चांदनी पारद सी लपटांनी है ऊजलता सों सबैं जग छायौ ।। "
("रसतरंग ", पं० ४३५)

प्रस्तुत विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि महाराव लखपतिसिंह ने परम्परागत अप्रस्तुतों का भी रमणीय प्रयोग किया है ।

महाराव लखपतिसिंह ने परम्परागत अप्रस्तुतों से हट कर एकदम अछूते अप्रस्तुतों की भी सफल योजना की है । इन अछूते अप्रस्तुतों के चयन में उन्होंने अपनी सौन्दर्यदृष्टि, कल्पना-शक्ति और जीवन और जगत के विविध क्षेत्रों के अनुभव ज्ञान का अच्छा परिचय दिया है । उनके साहित्य में ऐसे अनेक उदाहरण पाये जाते हैं जिनमें से कतिपय उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं :

एक : " पीपल जु पत्र सों उदर पेषि
दो उरज कनक के कलस देषि । ("सदाशिव व्याह ",छं० ५८)

oooooooo

११ दोहा : " अरुन बरन तरुनी-चरन-अंगुरी अति सुकुमार ।
चुवत सुरंग रंग सो मनौं चपि बिछुवन के भार ।। "
"बिहारी ", सम्पादक : आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, दोहा सं० २०, पृ० सं० १८६ ।

दो : " पीपल पत्र पेट पैं त्रिबली,
उई नाभिसर रोमहिं अवली ।। "
("लखपति भक्ति विलास ", छं० २३९)

उपर्युक्त दोनों उदाहरणों में नायिका के उदर के लिये पीपल-पत्र के अप्रस्तुत की कल्पना की गई है । उदर और पीपल-पत्र का आकार-साम्य कवि की इस कल्पना के मूल में है । छाती के नीचे से नाभि तक के उदरपट के साथ पीपल-पत्र की आकृति का साम्य विचारणीय है । दोनों के ऊपरी हिस्से की गोलाकृति, मध्य की मुख्य रेखा तथा अन्य छोटी छोटी रेखाओं और क्रमशः ऊपर से नीचे को पतले होते जाते कोमलांग में आकार-साम्य सहज ही दृष्टिगत किया जा सकता है । इस आकार-साम्य के अतिरिक्त दोनों की कोमल-कमनीयता का गुण-साम्य भी विचारणीय है । इस प्रकार नायिका के उदर के लिये पीपलपत्र के उपमान की यह कल्पना सार्थक है । कवि की सौन्दर्यदृष्टि एवं सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति का इससे अच्छा परिचय मिलता है ।

एक अन्य उदाहरण में कवि ने विरहिणी के सूखे शरीर के लिये " छुहारा " का अप्रस्तुत-विधान किया है जो उनकी संवेदनशीलता और निरीक्षण-शक्ति का परिचायक है :

" बीछुरिबै मन भावन कै सब
सूकि छुहारा भयौ अलि कौ तन । "
(" रसतरंग ", छंद ३८२)

यहाँ कवि ने ताप के कारण सूख जाना जिसका धर्म है ऐसे छुहारा के अप्रस्तुत को विरहताप के कारण नायिका के सूखे शरीर के प्रस्तुत के लिये प्रयुक्त किया है । नायिका के सूखे चे चेहरे की झुर्रियाँ और छुहारे

की सिकुड़न का साम्य कवि की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का अद्भुत परिचायक है । इसी प्रकार विरह के भाव-चित्रण के लिये कवि की दृष्टि प्रकृति-जगत के छोटे तिनके पर भी गई है :

" तन की दुति लषि दूब सों अति नीकी सुकुमार ।
प्रीतम सुमिरत विरह तें लटी देह निरधार ।। "
(" सुरतरंगिनी " छं० ६०२)

यहाँ कवि ने नायिका के देह-दौर्बल्य के लिये घास के अप्रस्तुत का प्रयोग किया है । प्रियतम की स्मृति में विरहजन्य दुःख से क्षीण होकर मुरकी हुई नायिका की देह के साथ घास की तुलना करना कवि की कल्पना शक्ति का अच्छा उदाहरण है । यह नायिका रीतिकाल के बिहारी जैसे कवियों की नायिका [१२] की भाँति अपने कवि के निर्दय मजाक का शिकार नहीं बनी है ।

महाराव लखपतिसिंह के द्वारा किये गये रूप-साम्य-मूलक अप्रस्तुत-विधान के उपर्युक्त विवेचन द्वारा हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उन्होंने परम्परागत और नवीन दोनों ही प्रकार के अप्रस्तुतों का काव्योचित प्रयोग किया है । एक ओर नख-शिख-वर्णन जैसे प्रसंगों में उन्होंने परम्परा का अन्धानुसरण किया है तो दूसरी ओर अपने अनुभवज्ञान और कल्पनाशक्ति और प्रतिभा के आधार नवीन अछूते अप्रस्तुतों का भी प्रयोग किया है । इन सब में परंपरागत अप्रस्तुतों में रमणीयता की रक्षा

ooooooo

१२ नायिका की वियोगजन्य क्षीणता के प्रति लखपति के उपर्युक्त उदाहरण से बिहारी का यह दोहा तुलनीय है :

इत आवति चलि जाति उत चली छसातक हाथ ।
चढ़ी हिडोरैं सी रहै लगी उसासीन साथ ।। "

द्रष्टव्य : " बिहारी " छं० सं० ३४, पृ० १७०, सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ।

वे अधिक कर पाये हैं ।

(२) धर्म-साम्य-मूलक अप्रस्तुत-विधान :

धर्म-साम्य-मूलक अप्रस्तुत-विधान के द्वारा प्रस्तुत के गुणधर्म को अनुभूतिगम्य बनाया जाता है । रूप-साम्य के द्वारा सौन्दर्यबोध का कार्य किया जाता है जब कि धर्म-साम्य के द्वारा भाव-बोध का । रीतिकाल के कवियों में देव को छोडकर प्रायः सभी रीति-बद्ध कवि रूप-साम्य-मूलक अप्रस्तुतों की सीमा में ही बँधे रहे साधर्म्य-मूलक अप्रस्तुतों का उन्होंने यदा-कदा ही प्रयोग किया । [१३] प्रस्तुत अध्ययन में हम देखेंगे कि महाराव लखपतिसिंह ने धर्म-साम्य-मूलक अप्रस्तुतों का भी पर्याप्त मात्रा में प्रयोग किया है । " रस-तरंग " में उन्होंने धर्म-साम्य-मूलक अप्रस्तुतों का सब से अधिक और सफल प्रयोग किया है । इस तथ्य के प्रमाणस्वरूप दिये जानेवाले उदाहरणों के प्रकाश में यह स्थापना की जा सकती है कि लखपतिसिंह साधर्म्यमूलक अप्रस्तुतों का प्रयोग करनेवाले रीतिबद्ध कवि देव की समकक्षता अवश्य कर सकते हैं ।

धर्म-साम्य-मूलक अप्रस्तुतों का विधान एक तो प्रस्तुत के सामान्य गुणधर्म के बोध के लिये और दूसरे आलम्बन को परिस्थिति विशेष में डालकर उसकी मानसिक प्रतिक्रियाओं को स्पष्ट करने के लिये किया जाता है । [१४] महाराव लखपतिसिंह के द्वारा किये गये धर्म-

oooooooo

१३ डॉ० बच्चनसिंह का यह प्रतिपादन द्रष्टव्य है :

" रीतिबद्ध कवियों में इस तरह के (धर्म-सादृश्य के) अप्रस्तुतों की साधारणतः कमी ही दिखाई देती है । —— रीतिबद्ध कवियों में देव ही ऐसे कवि दिखाई पड़ते हैं जिन्होंने इस तरह के अप्रस्तुतों का ~~अपेक्षाक~~ अपेक्षाकृत अधिक प्रयोग किया है । "
(" हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास ", षष्ठ भाग पृ० २५५)

१४ वही, पृ० २५५ ।

साम्य-मूलक अप्रस्तुत-विधान में उपर्युक्त दोनों बातें देखी जा सकती हैं ।

एक : प्रस्तुत के सामान्य गुणधर्म के बोध के लिये :

नायिका के गोरे कोमल अंगों की मृदुता, श्वेतता और स्निग्धता के विविध धर्मों की समानता के लिये माखन अप्रस्तुत को लाया गया है :

" आभा तन सरसात अति माखन तैं मृदुगात । "
(" सुरतरंगिनी " छं० सं० ६८१)

यहाँ नायिका के शरीर के अभीष्ट सामान्य गुणधर्मों की अभिव्यक्ति माखन अप्रस्तुत के द्वारा हो जाती है । परंतु इससे प्रस्तुत के सामान्य गुणधर्मों का बोध मात्र होता है, उनकी मानसिक क्रिया-प्रतिक्रिया की स्पष्टता नहीं होती ।

दो : प्रस्तुत की मानसिक क्रिया प्रतिक्रियाओं को स्पष्ट करने के लिये :

लखपतिसिंह के काव्य में इस प्रकार के भावव्यंजक साधर्म्य-मूलक अप्रस्तुत-विधान के अनेक उदाहरण बिखरे पड़े हैं । जैसे :

" आली कौं देत उराहनौ यौं द्रिग षेद उसास उदास धरैं ।
प्यासे ज्यौं भौंर के चेटुआ आकुल पंष उतायल कंप करैं । "
(" रसतरंग", छं० १६१)

इस उदाहरण में नायिका की आँखों के लिये भ्रमर के अप्रस्तुत की योजना की गई है । नायिका की आँखें प्रिय को पूर्वनिर्धारित स्थल पर न पाकर व्याकुल और उदास होकर इधर-उधर देखती हैं और रस के प्यासे

भ्रमर भी रस को न पाकर आकुल हो जाते तथा उनके पंख काँप उठते हैं। प्रस्तुत आँखों और अप्रस्तुत भ्रमर में बरौनियों और पंखों तथा पुतलियों और भ्रमर में क्रमशः आकार और रंग का साम्य तो है ही, साथ ही, कवि ने इन दोनों की भावगत उदासीनता, आकुल व्याकुलता के साम्य को भी लक्षित किया है। इस प्रकार भावव्यंजक धर्म-साम्य का यह उदाहरण है।

इस प्रकार प्रस्तुत के आलम्बन को परिस्थिति विशेष में डाल कर उसकी मानसिक प्रतिक्रिया को स्पष्ट करने के लिये प्रयुक्त धर्म-साम्य-मूलक अप्रस्तुत सामान्य धर्मबोध करानेवाले अप्रस्तुतों की अपेक्षा अधिक भावात्मक और व्यंजक होते हैं। जैसा कि हम देख आये हैं ऐसे अनेक उदाहरण लखपतिसिंह के काव्य में सहज प्राप्त हो जाते हैं। विशिष्ट परिस्थिति में मानसिक क्रिया-प्रतिक्रिया के लिये प्रयुक्त यह अप्रस्तुत द्रष्टव्य है :

" मुष मोरति है दृग जोरै नही रसवात सुहात न यौं चित भोरा।
पाउन देत कहूं पलिका पर प्रीति न जानति ऐसी कठोरा ।।
हाथ तैं हाथ छुडावति है बल बाहिर भागति है करि जोरा।
नायक नेह उपाय दिषानै पैं हाथ तैं जात ज्यौं पारद दौरा ।।"
(" रसतरंग ", छं० २७)

मुग्धा नवोढ़ा नायिका नायक की शृंगार-चेष्टाओं से लजाती अपने अंगों को संकुचित करती और नायक से छुड़ाती है और बलपूर्वक बाहर भाग जाती है। नायिका के मन की चंचलता और अंगों की शिथिलता एवं स्निग्धता नायक के उन्हें समेटने के प्रयत्नों को निष्फल कर देती है। कवि इस परिस्थिति विशेष में पड़ी नायिका की मानसिक अवस्था को स्पष्ट करने के लिये उसके अंगों के लिये पारद अप्रस्तुत का विधान करते हैं।

जैसे पारद को हाथों से नहीं समेटा जाता वैसे ही इस मुग्धा नायिका के शिथिल अंगों को भी नायक अपनी पकड़ में नहीं ले पाता ।

इसके साथ सुप्रसिद्ध कवि देव का निम्नलिखित अप्रस्तुत-विधान तुलनीय है : [१५]

" विमल विलास ललचावत लला को चित
ऐंचत इतै को वे उतै ही को मुरत हैं ।
पारे ही के मोती किधौं प्यारी के सिथिल गात,
ज्यौं ही ज्यौं बटोरियत त्यौं-त्यौं बिथुरत हैं ।। "

यह द्रष्टव्य है कि कवि देव और लखपति ने नायिका के शिथिल अंगों के लिये समान अप्रस्तुत पारद का प्रयोग किया है । दोनों के रचनाकाल को देखते हुए यह संभव है कि लखपतिसिंह का उपर्युक्त अप्रस्तुत-विधान कवि देव से प्रभावित रहा हो, किन्तु यहाँ एक महत्त्वपूर्ण बात को लक्ष्य कर लेना प्रासंगिक ही होगा । वह यह है कि इन दोनों कवियों ने नायिका की भिन्न प्रकार की मनःस्थितियों के सन्दर्भ में पारद अप्रस्तुत की योजना की है । देव की नायिका प्रणयविदग्धा है परंतु प्रणयमान के कारण कृत्रिम अंग शैथिल्य का प्रदर्शन करती है, इसलिए उसके साथ पारद के शैथिल्य-धर्म का साम्य स्वाभाविक नहीं कहा जा सकता । इससे बिल्कुल भिन्न लखपतिसिंह ने मुग्धा नवोढ़ा के सन्दर्भ में यह विधान किया है । नवोढ़ा के मन में नायक के सामीप्य, स्पर्शादि से स्वाभाविक लज्जा, संकोच और डर होता है । इसलिए उसके स्वाभाविक अंगशैथिल्य के साथ पारद के शैथिल्य-धर्म का साम्य स्वाभाविक सिद्ध हो जाता है । लखपतिसिंह ने

---

१५ द्रष्टव्य :

" देव और उनकी कविता ", पृ० १९३, ले० डॉ० नगेन्द्र ।

मुग्धा नवोढ़ा की मनःस्थिति बड़े सशक्त शब्दों में व्यंजित की है ।

उपर्युक्त दोनों उदाहरणों में प्रयुक्त अप्रस्तुतों का चयन लखपतिसिंह ने एकदम भिन्न ऐसे दो क्षेत्रों से किया है । प्रथम उदाहरण में आग पर औटाई जाकर अधिकाधिक सुस्वादु बननेवाली खीर के अप्रस्तुत को पाकशास्त्र के क्षेत्र से लिया गया है जो पाक-शास्त्र का एक तथ्य है जिसके द्वारा कवि ने मानस-शास्त्र के इस तथ्य को स्पष्ट किया है कि मनचाही वस्तु की अप्राप्ति उसके प्रति अधिकाधिक आकर्षण बढ़ाती है । कवि ने इस मानसिक अवस्था के लिए खीर के अप्रस्तुत का विधान किया है । उसी प्रकार दूसरे उदाहरण में लज्जा और काम का एकसाथ अनुभव करने-वाली प्रौढ़ा नायिका की मनःस्थिति को स्पष्ट करने के लिये प्रयुक्त आग और पानी में समान गति रखनेवाले लुहार के हाथों का अप्रस्तुत चुना गया है । परंतु कवि का यह अप्रस्तुत-चयन सशक्त नहीं है क्योंकि वह तथ्य निरूपक मात्र है भावव्यंजक नहीं ।

भावाभिव्यंजकता के साथ साथ अपने अछूतेपन के लिये भी अप्रतिम और कवि की मौलिक काव्योपम कल्पना-शक्ति के सरस उदाहरण के रूप में लखपतिसिंह द्वारा प्रयुक्त यह अप्रस्तुत उनके धर्म-साम्य-मूलक अप्रस्तुतों के सफल विधान का प्रमाण है :

" लाल चले परदेस हिं बाल कौ हाल भयौ तन षीन षरैं ।
जीउ मैं षेद न देत हैं भेद ये बात न काहूं सषी सौं करैं ।
आवतु है अंसुआ बरुनी लौं संकोच कियैं द्रिग मांभिन मुरैं ।
जैसे घर्यार कटोरी भरैं जल फेरि कैं भाजन ही मैं ढरैं ।। "
(" रसतरंग ", छंद संख्या १२४)

मुग्धा प्रोषितप्रिति का नायिका करुण-विप्रलम्भ की उत्तम आलम्बन बन सकती है । अपने कोमल भावों के निवेदन में वह सहज

ही सलज्ज और संकोचशील होती है, उस पर भी उसे उसके पति के परदेशगमन की दुःखद परिस्थिति विशेष में डालकर यदि उसकी असह्य और अव्यक्त मानसिक प्रतिक्रियाओं को काव्य-विषय बनाया जाय तो स्वाभाविक ही वह भावप्रवणता एवं सरसता का अच्छा उदाहरण बनेगा। कवि लखपति ने इसी सरस काव्यात्मक प्रस्तुत की कलात्मक अभिव्यक्ति के लिये उपर्युक्त उदाहरण में एकदम अछूते और अनूठे अप्रस्तुत की सफल योजना की है। आलम्बनगत मनःस्थिति इस प्रकार है : परदेशगमन के लिये प्रवृत्त नायक को देखते ही मुग्धा नायिका अपनी अवस्थाजन्य सीमाओं के कारण अपने हृदय की वेदना को अंदर ही अंदर दबा देती है, वह अपनी सखियों से भी कुछ नहीं कह पाती और अपने करुण हृदय के प्रतीक आँसुओं को भी संकोचवश बहा नहीं पाती। उसके वास्तविक वियोगजन्य-दुःख से भी उसकी यह अवस्थाजन्य मनोदशा अधिक मार्मिक है। कवि इसकी उचित अभिव्यक्ति के लिये प्रस्तुत-अप्रस्तुत की सरस कल्पना करते हैं। नायिका के आँसू बरौनियों तक आकर रुक जाते हैं, हृदय के संकोच के कारण वे आगे न बढ़ते हुए आँखों ही में मुड़ जाते हैं। प्रस्तुत की यह कल्पना अपने सूक्ष्म भाव के कारण सहज ही आस्वाद्य है। इसके लिये कवि जलघड़ी के अप्रस्तुत का विधान करते हैं। प्राचीन युग में समय का अनुमान लगाने के लिये ऐसी जलघड़ी का उपयोग होता था जिसकी नाँद अर्थात् चौड़े मुँह के जलभरे बरतन में एक बारीक छेदवाली कटोरी रहती थी और वह निश्चित परिमाण एवं अवधि में जल भरकर उसे उसी नाँद में ढुलका देती थी। उस कटोरी के द्वारा जल भरने और ढुलकाने में लगनेवाली निश्चित कालावधि के अनुसार समय का अनुमान लगाया जाता था। लखपतिसिंह ने नायिका के आँसुओं के बरौनियों तक आने और आँखों में ही मुड़ जाने के भावमय प्रस्तुत के लिये जलघड़ी के उपर्युक्त अप्रस्तुत का विधान किया है जो धर्म-साम्य का अत्यन्त संवेदनक्षम और सफल उदाहरण है। घड़ियाल की जलभरी नाँद और आँसू भरी आँख का

कलात्मक आकार-साम्य भी प्रेक्षणीय है । परंतु यह ध्यान रहे कि कवि का सूक्ष्म भावसंवेदन और उसका वास्तविक काव्य-सौन्दर्य आकार-साम्य में नहीं धर्म-साम्य में ही निहित है ।

घड़ियाल के इस अप्रस्तुत के चयन में कवि के अनुभव की सच्चाई का प्रमाण हम उनके घड़ियों के प्रति प्रेम और उनके द्वारा उसकी कारीगरी को दिये गये राज्याश्रय में पाते हैं । [१६] इस प्रकार यह अप्रस्तुत मौलिक के साथ-साथ कवि के अनुभव की सच्चाई का भी अद्वितीय उदाहरण है ।

(३) <u>प्रभाव-साम्य-मूलक अप्रस्तुत-विधान :</u>

जब किसी अप्रस्तुत को प्रस्तुत के साथ आकार, वर्ण, गुण-धर्मादि के कारण न लाया जा कर प्रभाव-साम्य को ध्यान में रख कर लाया जाता है तब उसे प्रभाव-साम्य-मूलक अप्रस्तुत-विधान कहा जाता है । ऐसे विधान में कवि को गुण-धर्म द्वारा अभिव्यक्त होनेवाले सौन्दर्य से अधिक सूक्ष्म भाव सौन्दर्य की अभिव्यक्ति अभीष्ट होती है । रीतिबद्ध कवियों ने प्रभाव-साम्य-मूलक अप्रस्तुतों का प्रचुर प्रयोग नहीं किया है । [१७] लखपतिसिंह के काव्य के विषय में भी यही बात कही

ooooooo

१६ प्रस्तुत प्रबंध के द्वितीय अध्याय में महाराव की जीवनी की चर्चा के प्रसंग में उनके डच, फ्रैंच और अंग्रेज़ी संगीत बजानेवाली घड़ियों के संग्रह और उसकी कारीगरी के राज्याश्रय का सप्रमाण उल्लेख किया जा चुका है । उनके राज्याश्रित कवि कुँवरकुशल विरचित ये पंक्तियाँ यहाँ पुनः दी जा रही हैं :

" मंजु शिरोमनि कौ मरम जंत्रराज की युक्ति ।
गनि खगोल भूगोल ज्यौं यौं घरयाल की उक्ति ।। "

(" लखपति जिस सिंधु, " छंद संख्या २०९)

१७ " हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास " षष्ठ भाग, संपादक डॉ० नगेन्द्र, पृ० २५७, पृष्ठ ले० डॉ० बच्चनसिंह ।

जा सकती है । यहाँ एक-दो उदाहरण दिये जा रहे हैं :

" पानि सौ पीरौ पर्यौ तन पी बिनु
बोलति है मुष और औरैं ।
जा छिन तैं द्रिग देषे हैं कान्ह के
ता छिन तैं द्रिग मैं विष घोरैं ।। "
(" रसतरंग ", छंद संख्या ४०६)

कवि यहाँ विरहिणी नायिका की गहरी वेदना को अभिव्यक्त करना चाहते हैं । जब से कृष्णा की अमृतमय आँखें देखी हैं और उनसे वियोग हुआ है तब से उन आँखों का यह विपरीत प्रभाव पड़ा है कि अब नायिका की आँखों में विष घोल रही हैं, अर्थात् कृष्णा का जो रूप संयोग में अमृतमय था वही वियोग में विष घोल रहा है । प्रभाव का यह कथन बड़ा ही भावगम्य एवं अभिव्यंजनाशिल्प का सफल उदाहरण है ।

एक अन्य उदाहरण भी द्रष्टव्य है :

" ज्यौं तूं संवारति कांग ही बार त्यौं
सौतनि के मुष होत अँधेरौ । "
(" रसतरंग ", छंद २३७)

नायिका अपने घने श्याम और सुदीर्घ केशों का विन्यास कर रही है । उसके इस केश-विन्यास के कारण उत्पन्न होने वाले विशिष्ट प्रभाव से सौतियों के मुख मुरझा जाते हैं । कवि ने यहाँ नायिका की केशराशि के प्रस्तुत के सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिये अप्रस्तुत के रूप में सौतियों के मुख पर पड़े अंधकार का प्रयोग किया है, जिस में रूप एवं धर्म का साम्य न होकर केवल प्रभाव का साम्य प्रमुख है ।

प्रभाव-साम्य के अल्पसंख्यक उदाहरणों को देखते हुए यह

कहना पड़ता है कि कवि द्वारा किये गये रूप-साम्य और धर्म-साम्य-मूलक अप्रस्तुत-विधान की तुलना में प्रभाव-साम्य-मूलक अप्रस्तुत-विधान का परिणाम भले ही कुछ कम हो किन्तु काव्य-कला के दृष्टिकोण से कवि उसके विधान में अत्यन्त सफल दिखाई पड़ते हैं । उपर्युक्त उदाहरणों के अतिरिक्त एक अन्य उदाहरण भी उल्लेखनीय है :

" मूंठि सी लगत माई डीठि नंदलाल की "

(४) संभावना-मूलक अलंकार :

इस अलंकार का मूलाधार साम्य से अधिक सम्भावना है । सम्भावना का क्षेत्र व्यापक और कल्पनामय होने के कारण कल्पनाशील कवियों को प्रस्तुत के रूप-चमत्कार एवं भावानुभूति की रमणीय एवं कल्पनाप्रचुर अभिव्यक्ति के लिये मुक्त क्षेत्र प्राप्त हो सकता है । अलंकार-वादियों ने इसे उत्प्रेक्षा अलंकार कहा है । रीतिकालीन कवियों ने उत्प्रेक्षा का प्रचुर प्रयोग किया है ।[१८] लखपतिसिंह ने भी उत्प्रेक्षा के प्रयोग में अपने कला-कौशल का अच्छा परिचय दिया है । उत्प्रेक्षा के भेदों में से लखपतिसिंह ने प्रमुखतया वस्तूत्प्रेक्षा, फलोत्प्रेक्षा और हेतूत्प्रेक्षा के प्रयोग किये हैं ।

(क) वस्तूत्प्रेक्षा :

" तातरननी बरननी सघन स्याम । मनु समरा बांन पिछ्छनि तमांम ।"

("सदाशिव-ब्याह ", छंद संख्या ६४)

लखपतिसिंह ने बरौनियों की सघनता के लिये यह वस्तूत्प्रेक्षा कल्पित की है कि मानो ये कामदेव के बाणों के पिच्छ हैं । वस्तूत्प्रेक्षा का एक अन्य

---

१८ वही, ('हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास', षष्ठ भाग) पृ० २५७ ।

उदाहरण दिया जाता है :

" काजर सौं मसले अंसुआ कुच ऊपर यौं छबि पाय भरें ।
बाकना चंदन लेप सुवास पैं पंकज तैं अलि पुंज परैं ।। "
(" रसतरंग " छंद संख्या, १४२)

काजल के श्यामरंग से मिलकर नायिका के स्तनों पर गिरे हुए आँसुओं की छबि के लिये कवि कल्पना करते हैं कि चंदन लेपयुक्त स्तन सुवासित पंकज हैं और उन पर गिरे श्यामवर्ण के अश्रु भ्रमरों का पुंज हैं । प्रस्तुत के आकार और वर्णसाम्य पर आश्रित यह उदाहरण कवि की रमणीय कल्पनाशक्ति का अच्छा प्रमाण बन सकता है ।

(ख) फलोत्प्रेक्षा :
oo—oo—oo—oo

फलोत्प्रेक्षा के भी उदाहरण संख्या में कम किन्तु काव्य-सौन्दर्य और कल्पनानुरंजक प्रयोग की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं । फलोत्प्रेक्षा का यह उदाहरण दिया जा रहा है :

" नाथ कौ हाथ कुचप्पर थापित
ये उपमा लषधीर दिढाई ।
अंगुरी के नष मानंऊ संभु के
भाल पैं चंद की माल चढाई ।। "
(" रसतरंग ", छंद संख्या ४५)

प्रस्तुत छंद में कवि शृंगार की स्थूल चेष्टा का वर्णन करते हैं । कामासक्त नायक के हाथ नायिका के स्तन पर पड़े हैं । स्थूल काम-चेष्टा के ऐसे वर्णन में भी कवि रमणीय कल्पना द्वारा रूप की छटा का सफल अंकन करते हैं । नायक की अँगुलियों के नखों की हार को चन्द्रमाला और नायिका के स्तन

को वर्ण और आकार-साम्य के आधार पर शंभु- शिवलिंग कल्पित किया गया है । फलोत्प्रेक्षा की रमणीय कल्पना के कारण रूप-वर्णन की यह मनोज्ञता उल्लेखनीय है ।

(ग) हेतूत्प्रेक्षा :

लखपतिसिंह ने हेतूत्प्रेक्षा का प्रयोग सब से अधिक किया है । जिस में उनकी काव्य-कला का अच्छा परिचय मिलता है । हेतूत्प्रेक्षा का यह उदाहरण द्रष्टव्य है :

" आँसू ढरि ढरि उर परत अैसैं लसैं उदार ।
गुंजन गुंजा हार गन, हुलस्यौ मुक्ता हार ।। "
("सदाशिव-ब्याह ", छंद संख्या १३२)

विरहिणी नायिका के गुंजाहार के गुंजा उसके रक्तिम आँसुओं के कारण लाल हो जाते हैं ऐसी यहाँ कल्पना की गई है । वास्तव में गुंजा लाल रंग का होता है, इस वास्तविक तथ्य का स्वीकार करते हुए भी उसके लाल होने का नया हेतु यहाँ कल्पित किया गया है । इसलिये यह हेतूत्प्रेक्षा का उदाहरण है । कवि जायसी हेतूत्प्रेक्षा के काव्यमय प्रयोग के लिये प्रसिद्ध हैं । [१९] उनकी इस हेतूत्प्रेक्षा के साथ लखपतिसिंह द्वारा प्रयुक्त उपर्युक्त हेतूत्प्रेक्षा की तुलना कल्पना और भावगांभीर्य की दृष्टियों से की जा सकती है । [२०]

" कुहुकि कुहुकि जस कोइल रोई
रक्त आँसु घुंघची बन बोई ।। "

0000000

१९ " जायसी ग्रन्थावली ", भूमिका, पृष्ठ १०४, लेखक: रामचंद्र शुक्ल ।
२० वही, " पद्मावत ", नागमती वियोग खण्ड, छंद संख्या १९, सम्पादक : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० १५८ ।

तथा " बूंद बूंद महं जानहु जीऊ ।
गुंजा गूंजि करै पिउ पीऊ ।। "

उत्प्रेक्षा अलंकार के सफल निर्वाह के लिये कवि परम्परा के सीमित क्षेत्र से आगे बढ़कर कल्पना के मुक्त क्षेत्र में विहार करता है । लखपति-सिंह में कल्पना-शक्ति के अच्छे उदाहरण मिलते हैं ; जैसे :

" पाटी मनु पाटी काममंत्र तैसैं बसिकारक कामतंत्र ।
मोती लर तिहुरी तरहदार । बागुरा पीयमनमृग बिथार ।।"
(" सदाशिव-ब्याह ", छंद संख्या - ७०)

यहाँ नायिका की केशश्रेणी को काममंत्र की पाटी (रीति) कहा गया है जो परम्पराश्रित है । परंतु ऐसी परम्परागत उक्तियों में कवि ने रमणीय कल्पना द्वारा काव्य-सौन्दर्य की सुरक्षा की है । उपर्युक्त छंद में कवि की यह कल्पना इसका प्रमाण है :

" मोती लर तिहुरी तरहदार । बागुरा पीय मन मृग बिथार ।"

यहाँ कवि यह कल्पना करते हैं कि नायिका द्वारा पहनी हुई तीन लड़ों वाली माला प्रिय के मनरूपी मृग को क़ैद करने का घेरा है । इस प्रकार की कल्पनाओं से परम्परागत उक्तियों को काव्य-चमत्कार के उपयुक्त ऐसा सन्दर्भ मिल जाता है । लखपतिसिंह के काव्य में ऐसी उत्प्रेक्षाओं की कमी नहीं है जो परम्पराश्रित होने पर भी रमणीय कल्पनाओं से सुन्दर बन पड़ी हैं ।

हेतूत्प्रेक्षा का कल्पनानुरंजक, व्यंजनापूर्ण एवं मानवीकरण से युक्त यह उदाहरण द्रष्टव्य है :

" येक लटी लषि छूटी मुष्ष पर
तै उपमा लषवीर दिषाई ।

क्यौं न मिलै पलकैं पलकैं पल
नैंननि कौं मनौं पूछन आई ।। "
(" रसतरंग ", छंद संख्या १२६)

नायिका की लट के मानवीकरण के द्वारा कवि व्यंजित करता है कि मानों वह लट नायिका से यह कहने आई है कि देख यह नायक कितना सुंदर है । पलभर के लिये नायक की पलकों से अपनी पलकें मिला कर तो देखो । इस में अंतिम कथन की व्यंजना अत्यंत सरस है । पलकैं और पल में प्रयुक्त चमक द्वारा व्यंजना और पुष्ट हो गई है । इसी प्रकार का एक अन्य उदाहरण भी यहाँ उल्लेखयोग्य है —

" चंदकला ढिग तारनि तहाँ उपमा यह चित्त मैं आई ।
मानहि कौ गढ तोरिबैं मैंन यौं आप संवारि गिलोल बनाई ।। "
(" रसतरंग ", छंद ४३२)

चन्द्रिका के प्रणय मान रूपी गढ़ को तोड़ने के लिये कामदेव के गुलेल की वही चन्द्र की किरन है जिसमें तारों के पत्थर रख कर उसे साधित किया गया है । कवि की यह मौलिक कल्पना काव्य-सौन्दर्य का उत्कर्ष करती है ।

(५) उदाहरण अलंकार :

" लखपति भक्ति विलास " के अन्तर्गत नीति एवं उपदेश के प्रसंगों में लखपतिसिंह ने उदाहरण अलंकार का सफल प्रयोग किया है । उदाहरण अलंकार में कोई साधारण बात कहकर " ज्यौं, त्यौं " आदि वाचक शब्दों द्वारा किसी विशिष्ट बात से उसकी समता दिखाई जाती है । [२१] समता के लिये जिस समर्थ उदाहरण का चयन किया जाता है उसकी प्रभविष्णुता इस अलंकार की सफलता के मूल में है । कदाचित्

२१ द्रष्टव्य : " साहित्य कोश ", प्रथम भाग, पृष्ठ १५१ ।

इसी कारण इस अलंकार का नामकरण ही " उदाहरण " किया गया होगा । लखपतिसिंह ने मार्मिक एवं लोकप्रचलित उदाहरणों का चयन करके प्रस्तुत विषय की अभिव्यक्ति को सुंदर और प्रभावशाली बना दिया है । कामी पुरुषों की विषयासक्ति के प्रति तिरस्कारभाव को कैसे सशक्त उदाहरण के द्वारा कवि ने व्यक्त किया है :

" पायौ कूकर हाड ज्यौं चाबत चित की चाहि
लागी कोर तालू फट्यौ बहत रुधिर परवाहि ।
बहत रुधिर परवाहि हाड चाटत हिय हरषै
कहुं लै गयौ इंकत नजरि करि मूढ न निरषै ।।
त्यौं ही कामी पुरुष तजत तन नाहिं अघायौ,
मांमिनि कौ वह भोग हाड ज्यौं कूकर पायौ ।। "
(" लखपति भक्ति विलास " छंद २१२)

प्रस्तुत कुंडलिया में कवि ने कामी पुरुष की समता के लिये हाड़ चाटते हुए कुत्ते का उदाहरण दिया है । उदाहरण के प्रभाव की पराकाष्ठा प्रस्तुत और अप्रस्तुत की मानसिक दशा के स्पष्ट कथन में है । कामी पुरुष स्त्री के शरीर का भोग करने पर भी कभी तृप्त नहीं होता । इस विषय-भोग के कारण उसीके शरीर का नुकसान होता है परंतु इसकी अज्ञानता के कारण वह उल्टा भोग-लिप्सा में अधिकाधिक लीन रहता है । प्रस्तुत की इस मनोदशा की प्रभावशाली अभिव्यक्ति के लिये कवि अप्रस्तुत कुत्ते की वैसी ही स्थिति का विधान करते हैं । कुत्ते के हाड़ चबाने के कारण उसकी कोर के घात से उसका तालू फट जाता है और अपने ही रक्त से भीगे हाड़ को अधिक स्वादिष्ट पाकर एकान्त में ले जाकर वह उसे चाटने में तल्लीन हो जाता है । वह अज्ञानतावश अपनी वास्तविक दुर्दशा को जान नहीं पाता । कामी पुरुष भी इसी प्रकार

अज्ञानतावश भोग-लिप्त रहता है । उदाहरण अलंकार के इस प्रयोग में उसकी मार्मिकता और कलात्मकता दोनों दृष्टियों से कवि सफल हुए हैं ।

एक अन्य प्रसंग में कवि ने मन की चंचलता की समता लंगूर की छलांग के साथ की है :

" मरैं पताल लंगूर ज्यौं मनभावैं, क्यैं राम सेवा बिना काम नावै ।।"
(" लखपति भक्ति विलास ", छंद संख्या १४७)

नीति-उपदेश के अतिरिक्त तत्वज्ञान, भक्ति और किसी पात्रविशेष की मन:स्थिति को भी लखपतिसिंह ने उदाहरण अलंकार के आधार पर स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है । जैसे, अद्वैत के जटिल एवं परम्परा-प्रसिद्ध तत्त्वज्ञान की कितने सरल और लोकप्रचलित उदाहरणों द्वारा अभिव्यक्ति की गई है :

" जग मैं वे वा मैं जगत तिल मैं ज्यौं है तेल ।
फल मह बीज सुबीज फल षगि षिढि करत हिं षेल ।। "
(" लखपति भक्ति विलास ", छंद संख्या ३३२)

प्रह्लाद की एकनिष्ठ भक्ति और परमात्मा के साथ उनके एकत्व का यह कथन भी उतने ही सरल उदाहरणों से युक्त है :

" षीर षीर षगि रहत ज्यौं नीर नीर मिलि नेत ।
तिल हिं तेल मिलि रहत त्यौं हरि सौं यौं सिसु हेत ।। "
(" लखपति भक्ति विलास ", छं० सं० ३०९)

पात्रों की विशिष्ट भाव-स्थितियों की समता के लिये लखपतिसिंह ने एक दो ऐसे अप्रस्तुतों को जीवन और जगत के विशिष्ट अनुभव-ज्ञान के आधार पर चुना है जो एकदम अछूते हैं । हाथी यदि कैथे को (कपित्थ

फल) निगल लेता है तो वह ज्यों का त्यों निकल जाता है । इस तथ्य के उदाहरण के द्वारा कवि कहते हैं कि रानी कयाधूया (भक्त प्रह्लाद की माता) की बुद्धि में महर्षि नारद द्वारा दिया गया ज्ञान टिका नहीं :

" ठहर्यौ नहिं ज्यौं गज भष कपित्थ,
त्यौं राज्ञी नहिं त्रिय ग्यान गथ्थ ।। "
(" लखपति भक्ति विलास " छं०सं० २११)

(६) दृष्टांत अलंकार :
o—o—o—o—o—o—o—o

उदाहरण की तरह दृष्टांत अलंकार का भी लखपतिसिंह ने सफल प्रयोग किया है । दृष्टांत के रूप में प्रकृति के प्रसिद्ध उपादानों का उपयोग किया है ।–

" समझायौ सब नारि पैं, समझ्यौं बाल न सोय ।
जल मह उपजै कमल पैं जल तैं भिन्न हिं जोय ।। "

तथा

" हठ चढयौ बाल जानत न हेत
बरषा जल बरसी पार पेत । "
(" लखपति भक्ति विलास " छंद संख्या १३७ और १३९)

दृष्टांत अलंकार के अन्तर्गत उन्होंने लोकप्रसिद्ध तथ्यों का कलात्मक उपयोग किया है । कुत्ते की पूँछ के टेढ़ेपन और नीम के कडुएपन का दृष्टांत रूप में उपयोग करके प्रह्लाद के बालहठ एवं स्वभाव के परिवर्तन की असम्भाव्यता का प्रभावकारी स्वरूप उपस्थित किया है । दोनों उदाहरण इस प्रकार हैं :

एक : " बंकाई श्वान पुछ की पुनि पहलादहिं भाउ ,
जतन अनेक हिं करि थके सरल न होंहि सुभाउ ।

सरल न होहिं सुभाउ बंसवलि का बिचि पोई,
रही उहां इक बरस जाहि पिनरि नीकैं जोई ।
सूधि भई न सोय कहैं मति आषै आई
तजी न तिनि कहुं तन पुछआ की बंकाई ।। "

(" लखपति भक्ति विलास " छं०सं० १७९)

दो: " करवाई नींब तजी अरन पहिलाद हिं अंग,
कोटि जतन करि करि थके भई न कटुता भंग ।
भई न कटुता भंग गंग जल घृत घट सींचै
क्यारी षांडहि करी मांभिन मिसरी कौ कीचै ।
पय इक्षू रस पाय भूमि अमृत भरवाई,
मुष न मधुरता भजी तजी नींब न करवाई ।। "

(" वही, " छं० सं० १८०)

असम्भाव्यता के उपर्युक्त दोनों दृष्टांत अपनी लोकप्रसिद्धि और प्रभाव के लिये अद्वितीय हैं । इन उदाहरणों में लोकव्यवहार सम्बन्धी ज्ञान के साथ साथ कलात्मक अभिव्यक्ति का भी सुभग संयोग हुआ है । नीति और उपदेश विषयक रूक्ष काव्य में कलात्मकता दुर्लभ होती है । इस दृष्टि से लखपतिसिंह की काव्य-कला के उपर्युक्त उदाहरण प्रशंसा के योग्य हैं ।

निष्कर्ष :
०००.०००

लखपतिसिंह द्वारा किये गये अप्रस्तुत-विधान के विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि यह विधान उनकी काव्य-कला का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है । प्रथम उल्लेखनीय बात यह है कि उन्होंने परम्परागत

अप्रस्तुतों को मुक्तरूप में अपनाया अवश्य है परंतु उनकी काव्य-कला परम्परा से दब नहीं गई है । परम्परागत अप्रस्तुतों का काव्योपम रमणीय प्रयोग करके अपनी कवि-प्रतिमा को भलीभाँति प्रमाणित कर दिया है । लखपतिसिंह के अप्रस्तुत-विधान की यह प्रमुख विशेषता है कि प्रकृति एवं मानवनिर्मित जीवन और जगत के विविध क्षेत्रों से उन्होंने अप्रस्तुतों का चयन किया है । कहीं कहीं तो मौलिक और अछूते अप्रस्तुतों का भी भावगम्य एवं कलात्मक प्रयोग किया गया है । लखपति-सिंह द्वारा प्रयुक्त धर्म-साम्य-मूलक अप्रस्तुतों को देखते हुए यह महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकलता है कि रीतिकालीन कवियों ने जिसका अल्प प्रयोग किया है, लखपतिसिंह ने उसके प्रचुर और कलात्मक प्रयोग किये हैं । हमारे विवेच्य कवि ने धर्म-साम्य के विविध अप्रस्तुतों का चयन जीवन और जगत के विविध क्षेत्रों एवं लोकव्यवहार के प्रसिद्ध तथ्यों से किया है । उनमें से कुछ अप्रस्तुतों का पुनः उल्लेख करना महत्त्वपूर्ण होगा ; जैसे : माखन, छुहारा, पारद, खीर, लुहार का हाथ, जलघड़ी, पान(पत्र), हाड़ चबाता-चाटता कुत्ता, लंगूर की छलांग, कपित्थ निगलकर उसे वैसा ही निकाल देनेवाला हाथी, टूटे साज का तूंबा, श्वान की टेढ़ी पूँछ, कडुआ नीम इत्यादि । अंत में यह निर्विवाद रूप में कहा जा सकता है कि महाराव लखपतिसिंह में अप्रस्तुत-विधान की कलात्मकता की अच्छी परख थी और अपनी काव्य-कला की उन्नति में उन्हों ने उसका सुनियोजन करके आलम्बन के रूप एवं भावानुभूति को प्रभावकारी रूप में प्रत्यक्षीकृत किया है ।

शब्दालंकार :

रीतिकालीन कवि अपनी शब्दालंकार-प्रियता के लिये प्रसिद्ध हैं । इस काल के कवि वर्ण-मैत्री तथा अन्य शब्दालंकारों से इतने अधिक मोहग्रस्त थे कि उनकी काव्य-प्रवृत्ति के उचित मूल्यांकन के लिये

उनके द्वारा प्रयुक्त शब्दालंकारों की ओर दृष्टिपात करना अनिवार्य सा हो जाता है ।[२२] शब्द-साधना के द्वारा नाद-सौन्दर्य, अर्थ-चमत्कार और उक्ति-वैचित्र्य भरना रीति-कवियों की सामान्य विशेषता है ।[२३] रीतियुग के कवियों की इस प्रवृत्ति ने महाराव लखपतिसिंह की काव्य-कला को कुछ ही मात्रा में प्रभावित किया है । उनके काव्य में शब्दालंकारों का प्रयोग कम भी हुआ है ।

शब्दालंकारों में लखपतिसिंह ने सब से अधिक एवं सफल प्रयोग वीप्सा अलंकार का किया है । कवि ने इस अलंकार के प्रयोग में कोरे शब्द चमत्कार की अपेक्षा वर्ण्यविषय के वैशिष्ट्य को अधिक लक्षित किया है । वीप्सा अलंकार का यह उदाहरण द्रष्टव्य है :

" पलिका तैं पीय प्यारी नैंक्हूं न्यारे होत
रीझि रीझि भीजि भीजि अंग न समात है ।
हसि हसि झुकि झुकि लेटैं अंक भरि भेटैं
मींठी मींठी मनुहारी मींठी मींठी बात है । "
(" रसतरंग ", छंद संख्या ३६१)

वीप्सा में पदावृत्ति के द्वारा भाषा में एक विशिष्ट गति पैदा होते ही मनोभावों की तीव्रता प्रकट हो जाती है । यहाँ कवि ने नायक-नायिका के संयोग-प्रसंग में उनके भावावेगों को " रीझि रीझि ",

oooooooo

२२ " रीतिकाव्य", लेखक डॉ० जगदीश गुप्त, पृ० ८५, प्रथम संस्करण, प्रकाशक: वसुमती, ३८, जीरो रोड, इलाहाबाद -२ ।

२३ द्रष्टव्य :
" हिन्दी रीति साहित्य", लेखक डॉ० भगीरथ मिश्र, पृ० १४४ द्वितीय आवृत्ति, राजकमल प्रकाशन ।

" मीजि मीजि ", " हसि हसि ", " मुनकि मुनकि " की आवृत्ति द्वारा ललित गति प्रदान की है । भाव की विशेष गति पदों की आवृत्ति में जीवन्त हो जाती है । अंतिम पंक्ति में " मींठी मींठी मनुहारी मींठी मींठी बात " म " और " ई " की मधुर ध्वनियों में अपनी वास्तविक मिठास के साथ अभिव्यक्त हुई है । लखपतिसिंह की कविता में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं । भगवान नृसिंह के अवतरित होने के प्रसंग का यह वर्णन विषयानुरूप प्रभविष्णुता का सुंदर और कलात्मक उदाहरण है :

" थर थर थर थर थर थर यौं थंभ, बिदरी दरार बिचि लषि
अचंभ ।
हहलहि परि हल हल हल्त गेह, थल थल्त रसातल थल अछेह ।।
सल सलिक्क सहस सिर सेषनाग, अकबक्कित त्रसित आसुर अभाग । "
(" लखपति भक्ति विलास " छंद ५८२-५८३)

तथा

" थर रंत थहर थिर फट्यौ थंभ, अवतरे उहां नरहरि अचंभ ।। "
(वही, छंद संख्या ५८९)

इन पंक्तियों में विशिष्ट ध्वनि की आवृत्ति से कवि ने वर्ण्य प्रसंग का प्रभाव प्रकट किया है । " थर थर थर थर थर थर्यौ थंभ ", " हहलहि परि हल हल हल्त गेह, " " थल थल्त रसातल थल, " " सल सलिक्क सहस सिर सेष नाग " आदि में शब्दों की आवृत्तियाँ कलात्मक प्रभाव से युक्त हैं ।

वीप्सा के उपरान्त अनुप्रास अलंकार का भी रमणीय प्रयोग कवि ने किया है । काव्य-सौन्दर्य की अभिवृद्धि के सहज साधन

के रूप में इस अलंकार का प्रयोग कवियों में अत्यधिक प्रसिद्ध है । लखपतिसिंह ने भी इस अलंकार का कलात्मक प्रयोग किया है :

" है हिय हिय हर हार हलावै
लषि लषपति लालन ललचावै ।। "
(" लखपति भक्ति विलास ", छंद संख्या २३८)

प्रस्तुत उदाहरण में " है हिय् हिय हर हार हलावै " के उच्चारण से होनेवाली श्वासोच्छ्वास की क्रिया से ही नायिका की छाती हिलाने की क्रिया का अनुभव हो जाता है । इसे शब्द चमत्कार का कलात्मक और सार्थक प्रयोग कहा जा सकता है । अनुप्रास का एक अन्य उदाहरण भी अपनी रमणीयता के दृष्टिकोण से उल्लेखनीय है :

" छबीली छूटे बार छाती छपाकर छायौ देषि छाछि परी
छीर मैं "
("रसतरंग " छंद संख्या १२९)

लखपतिसिंह ने यमक शब्दालंकार का अल्प प्रयोग किया है । एक उदाहरण दिया जाता है :

" पल सौं न लागैं पल येक पल कहूं
नैंकु प्रलय समान पल पीय बिनु टारियैं । "
(" रसतरंग, छंद संख्या ३१६)

इसमें " पल " शब्द का एकाधिक बार प्रयोग हुआ है और उसके दो अर्थ लिये गये हैं : एक " पल " अर्थात् घड़ी और दूसरा " पल " अर्थात् पलकें ।

निष्कर्ष :
ooooooo

जैसा कि वीप्सा, अनुप्रास और यमक के उपर्युक्त उदाहरणों

से स्पष्ट है कि लखपतिसिंह ने शब्दालंकारों का अल्प प्रयोग किया है। शब्दालंकारों का इतना अल्प प्रयोग अवश्य विचारणीय है। रीतिकाल के कवियों की शब्दालंकार प्रियता की चर्चा में हम यह दृष्टिगत कर चुके हैं कि यह उस युग के कवियों की सामान्य काव्य-प्रवृत्ति बन गई थी जिसने उनकी काव्य-कला को प्रभावित किया था। अपने युग की इस सामान्य कला-प्रवृत्ति से लखपतिसिंह बहुत कम प्रभावित हुए थे यह उपर्युक्त शब्दालंकारों के अल्पसंख्यक प्रयोग से सिद्ध हो जाता है। इसके कारणों पर विचार करने के लिये हमें रीतिकालीन अलंकरण-प्रवृत्ति के प्रेरक तत्व को समझना अनिवार्य है।

हिन्दी साहित्य के सुप्रसिद्ध इतिहासकारों एवं रीति-काव्य के विवेचकों ने इस युग की अलंकरण-प्रवृत्ति की प्रधानता को लक्षित करते हुए किसी ने इस युग के लिये " अलंकृत काल " नाम सुझाया[२४] तो किसीने इस प्रवृत्ति को उस युग की प्रधान प्रवृत्तियों में गिनाया है।[२५] इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए डॉ० नगेन्द्र ने ठीक ही लिखा है कि इस काल के कवियों ने " सचेत होकर और प्रायः प्रयत्नपूर्वक अपनी वाणी को अलंकृत किया है। "[२६] महाराव लखपतिसिंह पर अपने युग की इस प्रवृत्ति का बहुत कम प्रभाव पड़ा इसका कारण यह प्रतीत होता है कि यह अलंकरण-प्रवृत्ति तत्कालीन राज्याश्रित कवियों की अनिवार्य

ooooooo

२४ द्रष्टव्य : " मिश्रबन्धु-विनोद अथवा हिन्दी साहित्य का इतिहास तथा कविकीर्तन, " भाग : प्रथम, आवृत्ति, तृतीय भूमिका पृ० २१, गंगा पुस्तकमाला प्रकाशन।

२५ " हिन्दी रीति साहित्य ", लें० डॉ० भगीरथ मिश्र, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ; द्वितीय आवृत्ति, पृ० १४०-१४१।

२६ " रीतिकाव्य की भूमिका ", पृ० १६६, लें० डॉ० नगेन्द्र।

परिस्थितियों का परिणाम थी और महाराव उन राज्याश्रित कवियों से भिन्न स्वयं आश्रयदाता राजा कवि थे । इसलिये अपने युग के राज्याश्रित कवियों की तुलना में लखपतिसिंह की भौतिक परिस्थितियों और तदनुकूल साहित्यिक अनिवार्यता में बहुत बड़ा अन्तर था । अर्थात् रीतिकाल के राज्याश्रित कवियों की भाँति काव्य-रचना उनकी आजीविका का साधन नहीं थी । अतएव उनको शब्द-कौशल द्वारा अपने आश्रयदाता को चमत्कृत करके उनका क्षणिक मनोरंजन करना नहीं पड़ता था । महाराव लखपतिसिंह की काव्य-कला में शब्दालंकारों के आधिक्य के अभाव का यही कारण प्रतीत होता है । एक अन्य कारण यह भी हो सकता है कि उनकी अंतर्वृत्ति शब्दालंकारों की तुलना में अर्थालंकारों में अधिक रमी थी, अतः कदाचित् शब्द चमत्कार उनकी प्रकृति के अनुरूप न रहा हो ।

(इ) भाषा :

भाषा भावों और विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम है । उसके विषयानुरूप समर्थ एवं सशक्त प्रयोग से निराकार भावानुभूतियों को साकार स्वरूप मिलता है इसलिये काव्य-कला का यह एक महत्त्वपूर्ण उपकरण माना जाता है । समुचित समर्थ शब्दभंडार, शब्दशक्तियाँ, मुहावरों तथा कहावतों के भावानुरूप और पात्रानुकूल प्रयोग कवि की भाषा की कसौटी के आधारभूत तत्त्व हैं । महाराव लखपतिसिंह ने ब्रजभाषा में काव्य-रचना की है । उपर्युक्त दृष्टिकोण से उनकी भाषा के स्वरूप और सौष्ठव का विवेचन किया जा रहा है ।

शब्द भंडार :

तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी इन चार वर्ग के शब्दों से लखपतिसिंह की ब्रजभाषा का शब्दभंडार सम्पन्न हुआ है ।

तत्सम शब्द :

लखपतिसिंह की भाषा में तत्सम शब्दों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है । समकालीन साहित्यिक ब्रजभाषा के संस्कृत-गर्भित होने [२७] के सर्वसामान्य कारण के उपरान्त इसके प्रमुख दो कारण हैं, एक, संस्कृत में रचित ग्रन्थों के आधार पर शास्त्रीय ग्रन्थों की रचना और दूसरा तुकबन्दी ।

(एक) संस्कृत में रचित ग्रन्थों के आधार पर शास्त्रीय ग्रन्थों की रचना के कारण लखपतिसिंह ने संस्कृत गर्भित पदावली का प्रयोग किया है । " सुरतरंगिनी " का यह उदाहरण द्रष्टव्य है :

" कुंदन रुचिर अनूप तन काम कला रसलीन ।
मत्त महारस वीर में राते वसन नवीन ।। "
(" सुरतरंगिनी ", छंद संख्या ५५२)

उपर्युक्त पंक्तियों की भाषा में संस्कृत-प्रचुरता ध्यान देने योग्य है । " मत्त " और " राते " शब्दों को छोड़कर शेष सम्पूर्ण छंद शुद्ध संस्कृत शब्दों में ही रचा गया है । प्रथम दो चरणों में प्रयुक्त दो ~~सम-~~ सामासिक शब्द संस्कृत की तद्विषयक प्रवृत्ति के परिचायक हैं ।

अन्य शास्त्रीय ग्रन्थ " रस तरंग " से एक अन्य उदाहरण दिया जा रहा है :

" बसि जाकै पति विविध गति रुचत राग रंगीन
ते कहियैं स्वाधीनभर्तृका लषियैं कौतुक लीन ।। "
(" रस तरंग ", छंद संख्या १८५)

0000000

२७ " ब्रजभाषा व्याकरण, ले० डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, आवृत्ति, १९५४, पृ० ३२ ।

(दो) कवि ने कहीं कहीं संस्कृत के ऐसे कठिन शब्दों का भी प्रयोग किया है जिनका अर्थ-ज्ञान शब्द कोष की सहायता के बिना नहीं हो सकता । ऐसे अप्रचलित शब्दों के प्रयोग का प्रमुख कारण है तुकबन्दी । प्रमाणस्वरूप ये उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

" बिब्बोक " की तुक में " ओक " [२८] (निवास) " पग " की तुक में " अग " [२९] (पर्वत), "विलाप" की तुक में " संकलाप " [३०] (बाण सहित) आदि । किन्तु ऐसे अप्रचलित शब्दों का अधिक प्रयोग नहीं हुआ है ।

तद्भव शब्द :

लखपतिसिंह की भाषा के शब्द भंडार का दूसरा वर्ग तद्भव शब्दों का है । इस वर्ग में ऐसे शब्द आते हैं जो मूल संस्कृत अथवा फारसी आदि भाषाओं के शब्दों को कुछ विकृत अथवा परिवर्तित करके विकसित हुए हैं : जैसे,

लोय, लोइन, दिढाय, जोयसी, उतायल, पंति, मिग, पुहप,
लुनाई, सई, सांभ, खार, चउवेद, अपछर, जुन्हाई, जंभानी,
सज्या, संजुत, राता सद्रिस, थित, थिर, परमान, छाछि,
खीर, खिति, हथकरी, अवर, आँखि, आँसू, ढिठाई, जाति,

---

२८ " करै अनादर पीय कौ आये याकैं ओक ।
मान धरैं मन मांनिनी बरनि हाव बिब्बोक ।। " ("रसतरंग", ३७५)

२९ "कोमल हैं धरनीतल ये सब जैसे है कोमल जानकी के पग ।
सीत समीर है तैसें ई सूरय आडो न आवहु येक कहूं अग ।।
("रसतरंग," छं. सं. २६७)

३० "बिना अपराध करंति विलाप, तबैं शिव सांत भये सकलाप । "
(" सदाशिव ब्याह, " १४२)

गांठि, दांत, गुनी, नैन, बेनी, दई, छिन, भादों, अंगुरी,
काग, मोहन, बांह, जोबन, मौन, अंचरा, नाहक, दुति,
मांभ, गांउ, जुवती, चरन, द्यौस, बरखा, छार आदि ।

इन शब्दों का प्रयोग ब्रजभाषा की प्रकृति के अनुकूल ही हुआ है । किन्तु कुछ ऐसे तद्भव शब्दों का भी प्रयोग किया गया है जो ब्रजभाषा में अप्रचलित हैं : जैसे,

" पंख्य, क्रूर, डिठ्ठ, डाघ, मंस, सिनासी, त्क्न, रक्नी
आदि ।

इस प्रकार के शब्द फारसी इत्यादि विदेशी भाषाओं से भी लिये गये हैं जैसे खस्बाते, फ्तजीत, लेबास, हुकुम, बहादर, फारसी की उच्चारण विकृति से प्रभावित हो कर संस्कृत " इन्द्र " का " इंदर " हो गया है । ऐसा प्रयोग ब्रजभाषा में अप्रचलित है ।

इस प्रकार के तद्भव शब्दों की विपुल संख्या लखपतिसिंह की भाषा में दृष्टिगत होती है । उन के द्वारा व्यवहृत तद्भव शब्दों में जो विकृति दिखाई पड़ती है उसकी प्रेरक-शक्ति ब्रजभाषा की प्रकृति में देखी जा सकती है । तद्भव शब्दों की विशेषता यह है कि उनके कारण अर्थबोध में बाधा उपस्थित नहीं होती ।

देशज शब्द :

देशज शब्दों ने महाराव लखपतिसिंह के शब्दभंडार की अभिवृद्धि में महत्वपूर्ण योग ~~किया~~ दिया है । इस वर्ग के अन्तर्गत दो प्रकार के शब्द आते हैं, एक, जिन की व्युत्पत्ति संस्कृत शब्दों से नहीं सिद्ध की जा सकती, जैसे : जेवन्यारी (चांदनी), सतराय, नियराय, भभरानी, ढोरी, बिगोवै, संथा, अनवट, चोज, कंबा, उलंठ,

पोई आदि । दूसरे ऐसे शब्द जिन का व्यवहार स्थानिक (अर्थात् गुजराती) बोलचाल में होता है, जैसे, नणंद, मांनस (मनुष्य), न्यां, जुवानै जोध, सवार (सबेरा), चूंटै (चुनना), तोर (धाक जमाना), साय, गोंठिये, पापडी, डूंगली (प्याज), बूंब आदि । गुजराती भाषा कवि की मातृभाषा होने के कारण स्थानिक बोलचाल के ऐसे शब्दों का प्रयोग स्वाभाविक है । परंतु गुजराती के इन शब्दों के प्रयोग से अर्थ-ग्रहण में बाधा उपस्थित नहीं होती । कवि इनका प्रयोग सहजरूप में करते हैं । उनकी मातृभाषा (गुजराती) के ये शब्द ब्रजभाषा में घुल-मिल गये हैं ।

देशज शब्दों की संख्या का प्रतिशत तत्सम और तद्भव शब्दों की तुलना में कम है । ऐसा होते हुए भी भाषा में कोई दुरूहता या अस्वाभाविकता नहीं आने पाई है ।

विदेशी शब्द :

महाराव लखपतिसिंह ने जिन विदेशी शब्दों का व्यवहार किया है वे फ़ारसी, अरबी और तुर्की भाषाओं के हैं । ब्रजभाषा में इन विदेशी भाषाओं के शब्द स्वतंत्रतापूर्वक प्रयुक्त होते रहे हैं । [३१] ब्रजभाषा की इस प्रवृत्ति का सहज प्रभाव लखपतिसिंह की भाषा पर भी पड़ा ।

फ़ारसी शब्द :

बेराग, बेहद, बहार, ताफ़ता, खाविंद, सपेद, हमराह, दिल, सिरदार, हमगीर, दरहाल, बेपरवाह, गुमर, सिताब, गुदरान, बदफ़ैल, बदनीति, गुनह, आब, खिदमत, क़ज़, कागज़, नुक़्ती, खुशहाल,

---

३१ " ब्रजभाषा व्याकरण ", लेखक डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, आवृत्ति, १९५४, पृ० ३३

गुलेल, खूबक आदि । इन में रेखांकित शब्द व्रजभाषा में अप्रचलित हैं । ऐसे शब्दों के कारण भाषा में दुरूहता को दोष आ गया है ।

अरबी शब्द :
o-o-o-o-o

जहाज़, शोला, तलब, साहिब, क़बूल, फ़िरसाद, वसीला, नूर, तबक़, तहकीक़, नज़र, तौर, फ़जीत, हवान, फ़कीर, ज़ालिम, रिज़क, ख़ास, फ़र्ज़, बलाय । रेखांकित शब्द व्रजभाषा में अप्रचलित होने के कारण भाषा में दुरूहता आ गई है ।

तुर्की शब्द :
o-o-o-o-o

बेग़म और उज़बक ।

महाराव लखपतिसिंह ने मनगढ़न्त शब्दों का भी प्रयोग किया है । इन शब्दों का प्रयोजन तुक-निर्वाह मात्र है, उनका सार्थक प्रयोग कवि को अभीष्ट भी नहीं रहा है । ऐसे कुछ निरर्थक शब्द दिये जा रहे हैं : भिले, कौलत, रिसार, फन, अगंजी, लफनाका, संमा, ललवल, जरब, ग्रजार, तंगोटी, उहास, चाक्न, चिनॉपनी, लटाक, सीछन, गूमन, गुलफ़न आदि ।

निष्कर्ष :
oooooo

इस प्रकार महाराव लखपतिसिंह का शब्द-भण्डार समृद्ध है । उसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों का बाहुल्य है जिनके प्रयोग से काव्य-सौष्ठव बढ़ा है । तद्भव शब्दों का व्यवहार करके कवि ने पात्र एवं प्रसंग की अनुरूपता का निर्वाह किया है । देशज और कवि की प्रादेशिक भाषा के शब्द कवि की भाषा के लोक-प्रचलित स्वरूप के द्योतक हैं । " सदाशिव-ब्याह " और " लखपति भक्ति विलास " जैसे पौराणिक

विषयों को लेकर लिखे गये खण्डकाव्यों में अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग अवश्य खटकता है ; परंतु इसे समकालीन ब्रजभाषा की प्रवृत्ति ही समझना चाहिये । इन चार प्रकार के शब्द-वर्गों को दृष्टिगत करते हुए यह निष्कर्ष निकलता है कि लखपतिसिंह की ब्रजभाषा अपने समय की साहित्यिक ब्रजभाषा का ही प्रतिनिधित्व करती है । उसकी शब्द-सम्पन्नता के फलस्वरूप कवि की अभिव्यक्ति सशक्त और सार्थक बन सकी है ।

भाषा-सौष्ठव :

भाषा के सौष्ठव के अंतर्गत वर्ण्यविषय के अनुरूप शब्द-शक्तियों का प्रयोग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । अभिधा शब्द-शक्ति का प्रयोग तो कवि की भाषा में स्वाभाविक ही हुआ है । भाषा की लाक्षणिकता और व्यंजना-शक्ति के द्वारा उन्होंने अभिव्यक्ति को सार्थक और सशक्त बनाया है । अतः इनके प्रयोग पर भी संक्षेप में विचार कर लेना यहाँ आवश्यक है ।

लक्षणा शब्द-शक्ति :

लाक्षणिक प्रयोग के अनेक उदाहरण लखपतिसिंह के साहित्य में मिलते हैं । कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

" पुन्य तरु फूलि फर्‌यौ " ; " बिलास सुष भाग्यौ फिरैं भोग है " ; " बकै तुच्छ बांनी भयौ बैल घानी " ; " ऐसौ बाढ्‌यौ सोग है " ; " सो सुपनौ ह्वै गयौ " ; " नैंननि न राषैं नींद " ; " सुष छायौ " ; " भाग षुल्यौ " ; " हीय मैं हरष भर्‌यौ " ; " चित्त मैं चिंता के तंबू तने " ; " अंग न समात हैं " ; " रूप आयौ है रसाल कौ " ; आदि अत्यंत स्वाभाविकता के साथ प्रयुक्त हुए हैं ।

लाक्षणिक प्रयोग के ऐसे अनेक उदाहरण लखपतिसिंह के काव्य में मिल जाते हैं ।

व्यंजना शब्द-शक्ति :

लक्षणा की अपेक्षा व्यंजना शब्द-शक्ति काव्य के सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति में सब से अधिक सहायक होती है । व्यंजना के कलात्मक प्रयोग के अनेक सुंदर उदाहरण लखपतिसिंह के साहित्य में प्राप्त होते हैं । अलंकार-चर्चा में ऐसे उदाहरणों का आनुषंगिक उल्लेख किया गया है । व्यंग्य और विनोद के प्रसंगों में इसके उत्तम उदाहरण पाये जाते हैं ; जैसे :

एक " जानि परी दिन द्वैक भये तुम
वा घर के दरवान भये हो ।। "
(" रसतरंग " छंद संख्या २५१)

दो " चोरी कौ ऐसौ सुभाव है कान्ह कौ
चित्र हू मैं चित चोरत है ।। "
(वही, छंद संख्या ३२३)

नायिका से मिलने या उसे देखने की इच्छा से उसके घर के पास भटकनेवाले नायक की मनःस्थिति की व्यंजना उसे नायिका के घर का दरवान कहने में अत्यंत सफल हो पाई है । चित्र-दर्शन मात्र से नायिका के चित्त को हरने वाले कृष्ण की विशिष्टता की व्यंजना उसके चोरी के स्वभाव के व्यंग्यात्मक कथन द्वारा उतनी ही सार्थक हो पाई है ।

सखी के परिहास में नायिका की मुग्ध मनोदशा की व्यंजना का यह उदाहरण भी कलात्मक है :

" देषति चाहि सौं चौंप कियैं चित चातुर अंग सुसंग गहा है ।
राम के द्वार मैं चित्रहिंकार दसौं अवतार लिषे जु महा है ।।
सीता कौं पूछति या मैं सषी कहिं सातयैं रूप कौ नाम कहा है।
हास हसी सुनिकैं अधरानि मैं ऊतर ये मन रीभि रहा है ।।"
(" रसतरंग ", छंद संख्या २४५)

प्रस्तुत छंद में तथ्य के आधार पर व्यंजना का सशक्त प्रयोग हुआ है । विष्णु के दस अवतारों में राम सातवें माने गये हैं । राम ही के द्वार पर कोई चित्रकार दसों अवतारों का चित्र अंकित करता है । सीता से उनकी सखियाँ पूछती हैं कि ये सातवें स्वरूप का नाम क्या है ? प्रश्न के पीछे हास्य और व्यंग्य ही उद्दीष्ट है । सीता पति का नाम तो कह नहीं सकती, प्रश्न सुनकर अधरों में मुस्करा भर देती हैं । यह मुस्कान शाब्दिक उत्तर नहीं है परंतु वह शाब्दिक उत्तर से भी अधिक भाव-व्यंजक है जिसे देख कर सखियों का मन रीभ गया । कवि ने इस छंद में व्यंजना के सहारे अद्भुत काव्य-कौशल दिखाया है ।

उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि लखपतिसिंह ने भाषा की शब्द-शक्तियों का रसानुकूल विनियोगन करके अपने भाषा-सौष्ठव में अभिवृद्धि की है ।

मुहावरे-कहावतें :

भाषा में मुहावरों, कहावतों अथवा लोकोक्तियों के सफल प्रयोग से अभिव्यक्ति प्रभावकारी और सशक्त होती है । लखपतिसिंह ने लोक-भाषा की इस समृद्धि का भी यथोचित प्रयोग किया है ।

मुहावरों का प्रयोग :

निम्नलिखित मुहावरों का प्रयोग किया गया है :

" जानंत है मन याही कौ पीर कै

जानंत है परमेसर पीरा "

तथा " बिसवास तुमारौ बिसैबीस ", " मींड मारी सी ",
" छींट न पानी की छुई ", " जीभ तैं छार छानैं, " " इक तैं न मथौ
दोय मूढ ", " घाट घरिबौ ", " बोलिबैं मुष्य संभारि " ।

कहावतों का प्रयोग :

(क) " अपनौ पग काटत आप । "

(ख) " बैद हिं मुयैं बुलाय । "

(ग) " मुयैं जाय कैलास मैं जीवत जाय बलाय । "

(छ) " कूकर जात्रू संग करि आवै गंग अन्हाय । "

(ज) " हौनी कौ बन नाहिं । "

(झ) " घर पसि – – – – – जब लगी आगि ।

षोदत तब कुपक षरौ लागि ।। "

इसके अनुरूप गुणोंवाली भाषा का प्रयोग भी लखपतिसिंह
ने किया है ।

माधुर्य : शृंगार के प्रसंगों में माधुर्य गुण युक्त शब्दों का विनियोग
किया गया है : जैसे,

(क) बादर अनेक बार बूँदैं फूल बरसत सीस फूल

मनि युति दामिनि दिषाई है ।

मनित गरजि घोर रनित कपोत बोलै

आभूषन लाल पंति जगनूं उडाइ है ।। "

(ख) " गुंजनि के कुंज जहां मंजु गुंज भौंरनि की ।। "

आोज :

नृसिंहावतार के रौद्र प्रसंग में भाषा के ओज गुण युक्त

पदों का यह प्रयोग वीर एवं भयानक रस के अनुरूप ही है ।

" गज्जरि घोर सब्द हिं ग्रजंत, घूजंत धरनि गम्महिं घुजंत ।
भिगमगत नेत्र दुति ज्वलन काल, ~~वर्ह~~ कहिं विदीर्न जृंभा
बिसाल ।।
दाढा कराल कटकटहिं दंत, लल्वल प्रलंब जिहवा लसंत ।
चिलकंत चंचला कचनि चौंप, आछोट पुछ कृत छटा ओप ।। "

इस प्रकार भावानुरूप भाषा का प्रयोग कवि की सफलता का प्रमाण है ।

पात्रानुकूल भाषा :

कवि के भाषा पर अधिकार का सब से बड़ा प्रमाण है पात्रानुकूल भाषा का सफल प्रयोग । " रस तरंग " और " सदाशिव-ब्याह " में इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं ; जैसे :

" ओठ पैं दंतनि दाबि न दीजियैं हेरि हसैंगी सबैं पुर नारी ।
चौका कपोल पैं चूंनी से देषि ननंद लराई करै बिजमारी ।।
कंचुक की कस टूटि परैगी तौ कूदैंगी देय सषी करतारी ।
हाथनि जोरि कहूं हरि नागर, सासु निगोड़ी सौ देवैगी गारी ।।"

यहाँ स्त्री-सहज भाषा का प्रयोग प्रशंसनीय है । " बिजमारी ", "निगोड़ी" प्रचलित स्त्री-गालियाँ हैं जिनका कवि ने यहाँ पात्रानुकूल प्रयोग किया है । अन्य उदाहरण भी मिलते हैं ; जैसे :

" पिछले जनंम के पाप पाय, अवतार लियो है मूढ आय ।
करनी को मैं को कीन्ही कठोर, उपज्यौ ये सुत पापी अघोर ।।"

इन पंक्तियों में पुत्र प्रह्लाद के बालहठ के आनेवाले भयंकर परिणामों की दुःखद कल्पना से चिंतित माता कयाधूया के मातृ-हृदय में जो झुंझलाहट,

आक्रोश और व्यथा के भाव जगते हैं उनकी स्त्रियोचित भाषा के प्रयोग से कितनी सहज अभिव्यक्ति हो पाई है ।

" सदाशिव-ब्याह " में भीलनी और शिव के संवादों में भीलनी की इन उक्तियों में पात्रानुकूल भाषा के अच्छे उदाहरण मिलते हैं :

भीलनी : " तो सम संन्यासी तपी कहत जु बात कुदाय ।
मुयें जाय कैलास में जीवत जाय बलाय ।।
" " बडे तौर कै जोर बोलै किराती - - - -
" " बकै तुच्छ बानी भयौ बैल घानी - - - -
" " जटी बोलिजै मुख्य संभारि
" " रहै कौन तो संग रच्चे गुसाईं ।
लगै जाति कों गारि औ लज्जा जाई ।।
सतीव्रत राखौं सदा मैं संन्यासी
इहां लाग नांही अरे वन्नवासी ।। "
("सदाशिव-ब्याह " छंद ६५,८३,८६,८९,९०)

भीलनी की इन उक्तियों में स्त्री-सहज विवशता, कोप, दर्प, वाक्-चातुरी के अच्छे उदाहरण मिलते हैं ।

निष्कर्ष :
०००००००

महाराव लखपतिसिंह के भाषा-सम्बन्धी विवेचन के परिणामस्वरूप निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं :

(एक) लखपतिसिंह की भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा है । उन्होंने अपनी मातृभाषा कच्छी-गुजराती में एकाध भजन की रचना की है, परंतु अन्य ऐसी रचनाओं के अभाव में यह कहा जा सकता है कि ब्रजभाषा को ही साहित्य के सृजन के लिये

उन्होंने अपनाया है ।

(दो) उनकी भाषा का स्वरूप संस्कृत तत्सम प्रधान साहित्यिक व्रजभाषा का होते हुए भी कहीं कहीं उसमें प्रादेशिकता की झलक भी दिखाई पड़ती है ।

(तीन) विषयोचित, रसानुकूल और पात्रानुरूप भाषा प्रयुक्त करने की क्षमता कवि में निस्सन्देह है ।

(चार) तुकबन्दी के कारण कहीं कहीं अप्रचलित और निरर्थक शब्दों का भी व्यवहार किया गया है ।

(पांच) कवि ने अपनी भाषा को संस्कृत तत्सम, तद्भव, देशज एवं विदेशी शब्दों, लाक्षणिक एवं व्यंजक शब्दों की अर्थ-शक्तियों एवं लोकप्रसिद्ध मुहावरों, कहावतों, से समृद्ध और समर्थ बनाया है । उनके शब्द भंडार में उपयुक्त शब्दों की कमी नहीं है । निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि लखपतिसिंह की भाषा भावाभिव्यक्ति में सफल हो सकी है ।

(ई) छंद-योजना :

छंद प्रयोग का अध्ययन दो दृष्टियों से किया जा सकता है । एक तो भावाभिव्यक्ति के अनुरूप छन्द प्रयोग की दृष्टि से तथा दूसरे छन्दशास्त्र पर कवि के अधिकार की दृष्टि से । प्रथम विशेषता का अध्ययन उनके " लखपति भक्ति विलास " और " सदाशिव-ब्याह " नामक खण्डकाव्यों को लक्ष्य में करके और द्वितीय प्रकार का अध्ययन उनके शास्त्रीय ग्रंथों के परिप्रेक्ष्य में करना उपयुक्त होगा ।

लखपतिसिंह के खण्डकाव्य एवं शास्त्रीयग्रंथों में निम्नलिखित

छन्द मिलते हैं : पद्धड़ी, कुंडलिया, भुजंगप्रयात, भुजंगी, पायाकुलक, मोतीदाम, त्रिभंगी, कमल, पद्मावती, वेताल और दंडकला, दोहा और सवैया आदि । उपर्युक्त दृष्टिकोण से इन छन्दों का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है ।

पद्धड़ी :

इस छंद का प्रयोग कवि ने अपने दोनों खण्डकाव्यों में किया है । यह छंद प्रसंग एवं परिस्थिति के तादृश वर्णन के लिये प्रसिद्ध है और हिन्दी के कवियों ने इसका व्यापक प्रयोग किया है ।[३२] लखपतिसिंह ने भी इस छंद का प्रसंगानुरूप चयन करके उसका निर्वाह किया है । जैसे निम्नलिखित उदाहरणों में :

(एक) मदोन्मत्त हाथी के इस वर्णन में पद्धड़ी छंद की उपयुक्तता एवं सफलता दृष्टिगत की जा सकती है :

" पट स्याम भूलि दिय पीठि डारि, क्रोधांध भृकुटि करुरी कुडी ।
घुघरानि घंट घननार घोर, ढननंत ढनंनन ठौर ठौर ।।
मद वारि भरत निर्भर मदोर, सुष पावंत भौंरनि गुंज सोर ।
मस्तक पर्वत कौं शृंग मस्त, परचंड सुंड डंडा प्रसस्त ।।
दंतमूल द्रिढ दुव सुष्ट दंड, बरवंड पुष्ट पर्वत प्रचंड ।
गिरि गुहा गरौ गज्जरि घोर, ढावैं पग थंभा ठौर ठौर ।।
गढढाह ढीढ ढाढस कुढंग, महराय परत जिहि लषत भंग ।
ऊपर हि महावत चढ्यौ आय, अगडधंता धंता कहि कहि धकाय ।। "

(" लखपति भक्ति विलास ", छंद संख्या, ४६६ से ४६९)

---

३२ द्रष्टव्य : " साहित्यकोश " प्रथम भाग, पृ० ४७५, सम्पादक : डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ।

वर्णन-शैली के अंतर्गत पद्धड़ी छंद का [redacted] कवि ने सफल प्रयोग किया है। प्रबंध काव्य के अंतर्गत विविध प्रसंगों एवं परिस्थितियों के वर्णनों में इस छंद का प्रयोग बहुलता से हुआ है। एक अन्य उदाहरण भी द्रष्टव्य है :

(दो) " गावति मल्हार कौ राग बाल, मदमत्त चलंति मातंग चाल।
मिलि मच्यौ चार बिधि कौ चरित्त उघरी परम पलकैं पवित्र ।।
रक्नी इकंत अरु सुभग राग बरषा बनाउ अरु बिहद बाग।
भव लखी गौर तन तहां भाम बिज्जुरी सम दीपति कहैं वाम ।।"
("सदाशिव ब्याह ", छं०सं० ५३-५४)

१६ मात्राओं के शास्त्रीय बंधन का निर्वाह भी कवि उपर्युक्त दोनों उदाहरणों में कर पाया है।

<u>कुंडलिया :</u>

इस छंद का प्रयोग " लखपति भक्ति विलास " में आनेवाले उपदेश-प्रसंगों में ही किया गया है। उपदेश के लिये यह छंद उपयुक्त माना गया है।[३३] इस में छः पंक्तियाँ होती हैं। प्रत्येक में २४-२४ मात्राएँ होती हैं। छः पंक्तियों के इस छंद के प्रथम दो दल दोहा के और अन्तिम रोला के होते हैं। दोहा के चौथे-पाद को रोला के प्रथम पाद में दोहराया जाता है और दोहा का प्रथम पाद जिस शब्द से प्रारम्भ होता है उसी शब्द को रोला के चौथे पाद के अन्त में दोहराया जाता है। इस प्रकार साँप की कुंडली की तरह इस छंद में अर्थों के आवर्तन बने रहते हैं। दोहराये जाने से उपदेश अधिकाधिक

---

३३ द्रष्टव्य : " साहित्यकोश," प्रथम भाग, पृ० २६३। सं० डॉ० धीरेन्द्र वर्मा।

प्रभावशाली होता जाता है । लखपतिसिंह ने इस छंद का अत्यन्त सफल प्रयोग करके उपदेशात्मक प्रसंगों में यथेष्ट प्रभाव निर्मित किया है । प्रमाणस्वरूप यह उदाहरण द्रष्टव्य है :

" साँई असै बिसरिकै, भजत और कह भूप
अंध कंध चढि अंध के, परत धौंस जल कूप ।
परत धौंसजल कूप, जीय दुष गरभ न जान्यौ,
कह्यौ जिहीं वह कष्ट, परम ते नहीं पिछान्यौ ।
अैहैं वह दुष अवसि, बाँनि हिय वह बिसराई ।
आप कहावत ईस बिसरि कैं असे साँई ।।
साँई असे बिसरि कैं ।। "
("लखपति भक्ति विलास " छं० ५७२)

लखपतिसिंह ने कुंडलिया छंद का भावानुरूप प्रयोग किया है । प्रस्तुत उदाहरण में उपदेश के लिये उपयुक्त ऐसे आवर्तनों को दृष्टिगत किया जा सकता है । दोहा के अंतिम दल और रोला के प्रथम दल में " परत धौंस जल कूप " का तथा दोहा के प्रथम दल " साँई असे बिसरि कै " का छंद के अंत में आवर्तन इसके उदाहरण हैं । प्रथम दल के " साँई असे बिसरि कै " शब्दों का उलटाकर अंत में " बिसरि कैं असै साँई " रख कर साँप की कुंडली का दृश्य-सा उपस्थित हो जाता है ।

लखपतिसिंह की छंद-योजना में मात्रिक के साथ साथ संस्कृत के वर्णिक छंद भी मिलते हैं । उनमें सवैया, भुजंगप्रयात, मोतीदाम और कमल नामक छंद प्रमुख हैं ।

सवैया :

नायिका-भेद विषयक रचना " रसतरंग " में लखपतिसिंह ने लक्षण-उदाहरण-शैली के अंतर्गत सवैया छंद का प्रयोग किया है ।

उदाहरण स्वरूप :

" रैन उनींदे कहूं रति के सुष भोर भयौं पिय आई कन्हाई ।
आदर आसन दीन्हौ विवेक सौं रंचक हू न करी है रुषाई ।।
आनन अंबर ओर ढक्यौ वह अंतर के दुष की गति गाई ।
ऊंचौ उसास भर्यौ तरुनी बरुनी सिगरी अंसुआ भरि आई ।।"
(" रसतरंग " छं० सं० ५५)

धीरा अधीरा नायिका का उदाहरण देने में कवि ने यहाँ सवैया का प्रयोग किया है । इस का परीक्षण करने से पता चलता है कि प्रस्तुत उदाहरण में सात भगण और दो गुरुवाला मत्तगयंद सवैया प्रयुत हुआ है । रीतिकाल के कवियों को मत्तगयंद सवैया अधिक प्रिय रहा है ।[३४] लखपतिसिंह ने भी " मुक्तक शृंगार-चित्रों"के लिये उपयुक्त ऐसे सवैयों का चयन एवं सफल निर्वाह किया है । यह भावानुरूप छंद प्रयोग का अच्छा उदाहरण है ।

भुजंगप्रयात :
oooooooo

यह छंद चार य गण अर्थात् प्रत्येक चरण में १२ वर्णोंवाला छंद है । वीर रस तथा प्रार्थना के विषय के लिये उपयुक्त माने गये ।[३५] इस छंद का प्रयोग लखपतिसिंह ने कटु, आलोचनात्मक उपदेशों के लिये किया है, जैसे :

" सुनौ संडमर्का जाती गुमानी, छसास्त्री भये पैं रहे हो अग्यानी ।
पढे न्हाय संध्या उचारे जु पानी, जप्यौ नां जगंनाथ तौ छार छानी ।। "
(लखपति भक्ति विलास, छं०सं० १७२)

ooooooo

३४ द्रष्टव्य :
एक : "देव और उनकी कविता ", पृ० २४९-२५०, डॉ० नगेन्द्र । तथा
दो : " हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षष्ठ भाग, पृ० २१९
लें० डॉ० बच्चनसिंह ।

३५ द्रष्टव्य :
" साहित्यकोश ", प्रथम भाग, पृ० ६०१

इस प्रकार परंपरा-प्रसिद्ध विषय से भिन्न विषय में भुजंगप्रयात का प्रयोग कवि की काव्य-कला की विशेषता मानी जा सकती है ।

मोतीदाम :

यह भी वर्णिक समवृत्त छंद है जो अपनी द्रुत गति के लिये प्रसिद्ध है । लखपतिसिंह ने भी गतिशील प्रसंगों में इस छंद का प्रयोग किया है । शिवजी भीलनी के प्रति प्रणय निवेदन करते हैं और कामार्त्त हो कर उसके पीछे पीछे जाते हैं । उन की मानसिक चंचलता इस गतिशील छंद में उचित अभिव्यक्ति पा सकी है :

" लगे तब पीठि चले पंचमुख्ख ।
चंदाननि मुख्ख लखै चितसुख्ख ।
बढे उनमाद चढे परवत्त
बसे सरबंग विषै रस मत्त ।

("सदाशिव ब्याह " छं० सं०)

लखपतिसिंह की छंद योजना की एक अन्य विशेषता यह है कि उन्हों ने शास्त्रीय ग्रंथों की अपेक्षा खण्डकाव्यों में अधिक छंदों का प्रयोग किया है । कथाप्रसंगों की विविध परिस्थितियाँ उसका कारण है ।" लखपति-भक्ति विलास " में छंद-संख्या अपेक्षाकृत कम है परंतु " सदाशिव-ब्याह " में पंद्रह छंदों का प्रयोग किया गया है । उन में उपर्युक्त छंदों के अतिरिक्त पायाकुलक, भुजंगी, त्रिभंगी, कमल, पद्मावती, वेताल, दंडकला और चौपाई नामक छंदों का भी प्रयोग हुआ है । भावानुरूप छंद-परिवर्तन इसका कारण है ।

निष्कर्ष :

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि लखपतिसिंह ने छन्द-विधान में काव्य के वर्ण्य-विषय को प्राधान्य दिया है । वर्ण्य की

समुचित एवं प्रभावशाली अभिव्यक्ति के लिये उन्होंने तदनुरूप छन्दों का चयन किया है । छन्द-निर्वाह में कवि प्रायः सफल हुए हैं ।

महाराव लखपतिसिंह की काव्य-कला का अध्ययन यहाँ समाप्त होता है । चित्रात्मकता, अप्रस्तुत-विधान, भाषा और छन्द सम्बन्धी उपर्युक्त विवेचन का निष्कर्ष यहाँ दिया जा रहा है :

(एक) महाराव लखपतिसिंह ने शृंगार, भक्ति और उपदेश विषयक विविध वर्ण्यवस्तु की कलात्मक अभिव्यक्ति के लिये काव्य-कला के विविध उपादानों - चित्रात्मकता, अप्रस्तुत-विधान, भाषा-सौष्ठव, और छंदों का सफल विनियोग किया है ।

(दो) शृंगार की सरस चेष्टाओं, रूप के रमणीय तरल दृश्यों, भावानुभूति के संवेदनों की कवि ने चित्रोपम अभिव्यक्ति की है ।

(तीन) अप्रस्तुत-विधान में कवि ने परंपरा का अंधानुकरण न करके अपनी प्रतिभा के संयोजन से परंपरा का सौंदर्योपकारक निर्वाह किया है । नये मौलिक अप्रस्तुतों की सृष्टि करके उन्हों ने अपनी काव्य-कला का अच्छा विस्तार किया है । धर्म और प्रभाव-साम्य-मूलक नये, मौलिक अप्रस्तुतों का प्रयोग करके उन्होंने मौलिक कल्पना-शक्ति एवं जीवन और जगत के अनुभव वैविध्य का अच्छा प्रमाण दिया है ।

(चार) कवि की भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा है । उनकी भाषा का शब्द-भण्डार अपने विषय की अभिव्यक्ति के लिये सम्पन्न है । उनकी भाषा व्याकरण-शुद्ध है । कहीं

कहीं व्याकरण-दोष एवं प्रादेशिक प्रभाव अवश्य खटकते हैं। भाषा की लाक्षणिकता, व्यंजकता, लोकप्रचलित मुहावरों, कहावतों आदि का भी उन्होंने विषयोचित, पात्रानुरूप एवं रसानुकूल विनियोग किया है।

(पाँच) कवि ने छंद-प्रयोग भी विषय और शैली के अनुरूप ही किया है। हिंदी की प्रकृति के अनुरूप मात्रिक छंदों के साथ ही कहीं कहीं संस्कृत के वर्णिक छन्दों का भी प्रयोग किया है।

०००